॥ श्रीः ॥

हरिदास संस्कृत ग्रन्थमाला ९२

दशकुमार-पूर्वपीठिका

'बालविबोधिनी' 'बालक्रीडा' व्याख्याद्वयोपेता

चौखम्बा अमरभारती प्रकाशन

पोस्ट बाक्स संख्या ११३८

वाराणसी–२२१००१ (भारत)

|| श्रीः ||

हरिदास संस्कृत ग्रन्थमाला
९२

महाकविदण्ड्याचार्यप्रणीत–

दशकुमार-पूर्वपीठिका

'बालविबोधिनी'-'बालक्रीडा' टीकाद्वयोपेता

संस्कृतटीकाकारः—

साहित्याचार्य पं० श्रीताराचरणभट्टाचार्य

हिन्दीटीकाकारः—

साहित्यरत्न पं० श्रीकेदारनाथ शर्मा

चौखम्बा अमरभारती प्रकाशन

भारतीय सांस्कृतिक साहित्य के प्रकाशक व विक्रेता

पोस्ट बाक्स संख्या १३८

के० ३७/१३०, गोपाल मन्दिर लेन

वाराणसी–२२१००१ (भारत)

[illegible]
चौखम्बा अमरभारती प्रकाशन
पोस्ट बाक्स ११३८
के. ३७/१३०, गोपाल मन्दिर लेन
वाराणसी २२१००१, फोन-३३३५०८

षष्ठ, संस्करण, सन् १९८१ ई०
वि. सं. २०३८ (पुनः मुद्रित १९९९ ई०)
मूल्य ३०-००

अपरं च प्राप्तिस्थान
चौखम्बा संस्कृत पुस्तकालय
कचौड़ी गली, वाराणसी–२२१००१

मुद्रक—
चारु प्रिन्टर्स, वाराणसी

उपोद्धात

महाकवि दण्डी

महाकवि दण्डीकी उत्पत्ति सातवीं शताब्दीमें हुई। यों तो इनकी उत्पत्तिके समय निर्धारणमें विद्वानोंमें मतभेद है परन्तु अवन्तिसुन्दरीके आधारपर इनके जीवनचरितका कुछ वर्णन इस प्रकार है :—महाकवि दण्डी, किरातार्जुनीयके रचयिता कविवर भारविके परममित्र दामोदरके प्रपौत्र थे अथवा कुछ विद्वानोंके कथनानुसार महाकवि भारविका नाम ही दामोदर था और दंडी कवि उन्हीं भारविके प्रपौत्र थे। दंडी कविके पितामहका नाम मनोरथ था तथा पिताका नाम वीरदत्त था। वीरदत्त चार भाई थे। चारों भाइयोंमें वीरदत्त सबसे छोटे तथा दर्शन-शास्त्रके निष्णात थे। दंडीकी माताका नाम गौरी देवी था। अभाग्यवश दंडी कवि बाल्यावस्थामें ही मातृ-पितृविहीन हो गये थे। ये काञ्चीपुरीके निवासी थे यह जनश्रुति तो सुविख्यात है ही कि पल्लवनृपतिके राजकुमारको शिक्षित करनेके लिए उन्होंने अपने प्रख्यात ग्रन्थ 'काव्यादर्श' की रचना की थी। कई लेखकोंके मतोंसे 'काव्यादर्श' में वर्णित राजवर्मा ही काञ्चीके अधिपति पल्लव नृपति हैं। पल्लव नृपति शैवधर्मावलम्बी थे और उसके प्रचारक भी थे। इनका राज्यकाल ईसवी ६९० से ७२५ तक माना गया है। अतएव इन महाकविका समय इतर प्रमाणोंके अनुसार तथा अवन्तिसुन्दरीकी कथाके आधारपर सातवीं शताब्दीका अन्तिम चरण ज्ञात होता है। इस कथनकी पुष्टि इसके द्वारा और भी मानी जाती है कि काव्यादर्शमें कालिदास एवं बाणके वर्णनोंके सदृश वर्णन पाया जाता है। प्रोफेसर तथा इतिहासज्ञ पाठकके कथनानुसार 'काव्यादर्श' में निर्वर्त्य तथा विकार्य एवं प्राप्य हेतुका विभाग वाक्यपदीयकर्ता भर्तृहरि (६५० ई०) के समान किया गया है। परन्तु महाशय काणेने अपनी साहित्यदर्पण की भूमिकामें अनेक प्रमाणोंका उद्धरण देकर सिद्ध किया है कि कविवर दंडी भामहके पूर्ववर्ती कवि थे। यह बात अवश्य ध्यान देने योग्य है कि महाशय काणे भामहका काल ७०० ई० के

उपोद्घात

महाकवि दण्डी

महाकवि दण्डीकी उत्पत्ति सातवीं शताब्दीमें हुई। यों तो इनकी उत्पत्तिके समय निर्धारणमें विद्वानोंमें मतभेद है परन्तु अवन्तिसुन्दरीके आधारपर इनके जीवनचरितका कुछ वर्णन इस प्रकार है :—महाकवि दण्डी, किरातार्जुनीयके रचयिता कविवर भारविके परममित्र दामोदरके प्रपौत्र थे अथवा कुछ विद्वानोंके कथनानुसार महाकवि भारविका नाम ही दामोदर था और दंडी कवि उन्हीं भारविके प्रपौत्र थे। दंडी कविके पितामहका नाम मनोरथ था तथा पिताका नाम वीरदत्त था। वीरदत्त चार भाई थे। चारों भाइयोंमें वीरदत्त सबसे छोटे तथा दर्शन-शास्त्रके निष्णात थे। दंडीकी माताका नाम गौरी देवी था। अभाग्यवश दंडी कवि बाल्यावस्थामें ही मातृ-पितृविहीन हो गये थे। ये काञ्चीपुरीके निवासी थे यह जनश्रुति तो सुविख्यात है ही कि पल्लवनृपतिके राजकुमारको शिक्षित करनेके लिए उन्होंने अपने प्रख्यात ग्रन्थ 'काव्यादर्श' की रचना की थी। कई लेखकोंके मतोंसे 'काव्यादर्श' में वर्णित राजवर्मा ही काञ्चीके अधिपति पल्लव नृपति हैं। पल्लव नृपति शैवधर्मावलम्बी थे और उसके प्रचारक भी थे। इनका राज्यकाल ईसवी ६९० से ७२५ तक माना गया है। अतएव इन महाकविका समय इतर प्रमाणोंके अनुसार तथा अवन्तिसुन्दरीकी कथाके आधारपर सातवीं शताब्दीका अन्तिम चरण ज्ञात होता है। इस कथनकी पुष्टि इसके द्वारा और भी मानी जाती है कि काव्यादर्शमें कालिदास एवं बाणके वर्णनोंके सदृश वर्णन पाया जाता है। प्रोफेसर तथा इतिहासज्ञ पाठकके कथनानुसार 'काव्यादर्श' में निर्वर्त्य तथा विकार्य एवं प्राप्य हेतुका विभाग वाक्यपदीयकर्ता भर्तृहरि (६५० ई०) के समान किया गया है। परन्तु महाशय काणेने अपनी साहित्यदर्पण की भूमिकामें अनेक प्रमाणोंका उद्धरण देकर सिद्ध किया है कि कविवर दंडी भामहके पूर्ववर्ती कवि थे। यह बात अवश्य ध्यान देने योग्य है कि महाशय काणे भामहका काल ७०० ई० के

पश्चात्का मानते हैं। परन्तु भामहका काल ६०० ई० के बादका कदापि नहीं है अपितु उनका काल ५०० ई० प्रथम अथवा इसके समीप मानें तो कोई हानि नहीं है।

हाँ, महाशय काणेका कथन विचारने योग्य अवश्य हो सकता है, क्योंकि अवन्तिसुन्दरी कथाको प्रमाणरूपेण माननेमें अभीतक सभी इतिहासज्ञोंमें मतैक्य नहीं है। महाशय काणे स्वमतानुरूप सिद्धान्तके समर्थनमें कहते हैं कि कवयित्री विद्या (विज्जा) वा विज्जकाके नामसे निर्दिष्ट एक श्लोक 'शार्ङ्गधर-पद्धति' में वर्णित है। उक्त श्लोकमें 'काव्यादर्श' का वर्णन है। वह श्लोक निम्नांकित प्रकारसे है।

'नीलोत्पलदलश्यामां विज्जको मामजानता ।
वृथैव दण्डिना प्रोक्तं सर्वशुक्ला सरस्वती ॥'

इस कथनसे यह सिद्ध ही है कि 'काव्यादर्श' के प्रणेता दण्डी कवि ही हैं। यथाक्रम दसवीं और एकादश शताब्दियोंके आलंकारिकोंने अर्थात् मुकुल भट्ट और मम्मट भट्ट महोदयोंने क्रमशः अपने-अपने अलंकार-ग्रन्थोंमें, जिनके नाम 'अभिधावृत्तिमातृका' तथा 'शब्दव्यापारविचार' रक्खा है, विज्जकाके अनेक श्लोकोंका उद्धरण दिया है, अतएव विज्जका का समय ८५० ई० पूर्व है। जल्हणकविकी 'सूक्तिमुक्तावली' में राजशेखरकृत जो श्लोक मिलता है उससे विदित होता है कि कर्नाटक प्रान्तमें विजयांका नामकी कोई एक कवयित्री सरस्वतीके समान तदानीन्तना थी, जैसा निम्नांकित शार्ङ्गधरपद्धतिके १८४ वें श्लोकसे प्रतीत होता है—

'सरस्वतीव कार्णाटी, विजयाङ्का जयत्यसौ ।
या विदर्भगिरां वासः कालिदासादनन्तरम् ॥'

विज्जका ही विजयांका थी तथा वही विजयांका यदि द्वितीय पुलकेशीके कुमार चन्द्रादित्यकी महारानी विजयभट्टारिका रही हो तो उसका काल ६६० ईसवीके समीप माना जाता है। अतः इससे सिद्ध हो गया कि महाशय काणे दण्डी कविको ६०० ई० के समीप मानते हैं तथा अन्य इतिहासकार इन्हें सातवीं

सदीके अन्तिम चरणमें मानते हैं। इन दोनों मतोंमें अर्थात् महाशय काणे और अन्य इतिहासवेत्तृमण्डलोंके मतोंमें महाशय काणेका मत कुछ शिथिल मालूम पड़ता है। अस्तु, दण्डी कविके द्वारा रचित ग्रन्थोंमें भी इतिहासकारोंमें मतैक्य नहीं है। राजशेखर कविकृत शार्ङ्गधरपद्धतिके श्लोक १७४ से स्पष्ट विदित होता है कि प्राचीन समयसे दण्डीकविरचित तीन काव्य हैं—जैसा कि माना भी जाता है।

महाकवि दण्डीकी रचना

कुछ इतिहासलेखक दशकुमारचरित तथा काव्यादर्शको, एवं कोई अवन्ति-सुन्दरीकथा तथा काव्यादर्शको, दण्डीकविप्रणीत मानते हैं। परन्तु काव्यादर्शको सभी एकमतसे दण्डीकविविरचित मानते हैं। लेकिन, अवन्तिसुन्दरी कथाकी अपेक्षा दशकुमारकी ओर इतिहासज्ञ अधिक मतैक्यमें पाये जाते हैं। कुछ इतिहासज्ञ तो 'छन्दोविचिति' नामक एक काव्यको दंडी कविका तीसरा काव्य माननेके पक्षमें हैं। किन्तु, छन्दस् शब्द छन्दःशास्त्रका नाम ही है। इस नामका कोई काव्य नहीं है। अस्तु, महाशय कीथके मतानुसार दशकुमार चरितका भूगोलचित्रण तो हर्षवर्द्धन पूर्वके भारतके वर्णनसे साम्य रखता है। दशकुमारचरितकी भाषाप्रणाली तथा वर्णनशैली भी दण्डीकविके सुबन्धु और बाणभट्टके पूर्वमें होनेकी सूचना देती है। महाकवि भारवि कांचीनगरीके नृपति सिंह विष्णुवर्माके सभापण्डित थे। इससे यह सिद्ध है कि दण्डी कवि सातवीं सदीके उत्तरार्द्धमें थे।

दशकुमारचरित

यह एक सुन्दर गद्यकाव्य है। इसमें पूर्वपीठिका, चरित और उत्तर-पीठिका, तीन भाग हैं। पाँच उच्छ्वासोंकी पूर्वपीठिका है। आठ उच्छ्वासोंका चरितभाग है। उत्तरपीठिका तो केवल अष्टम उच्छ्वासकी उपसंहारमात्र है। इस काव्यकी भाषा ललित तथा मधुर है और साथ ही बाणभट्ट एवं सुबन्धु कविकी भाषाओंसे सरल भी है। यह काव्य श्लेषालंकारहीन है। अन्य उपमा आदि अलंकार भी प्रचुरतामें नहीं पाये जाते। इसका कथानक राजवाहनादि

दशकुमारोंकी यात्रा—विलास आदिके आधारपर अति रोचकता एवं सरलतासे लिखा गया है। इसमें पाठकोंको मुग्ध एवं आकर्षित करनेकी खूबी है। चौर-शास्त्र और राजनीतिज्ञान तथा व्यावहारिक ज्ञानका उपदेश तो पदे-पदे है। कुछ स्थलोंमें कामशास्त्रका वर्णन निपुणतापूर्ण वर्णित है। कुछ इतिहासके पारंगत उसे अश्लील होनेसे दोषमय कहते हैं किन्तु साहित्यिक दृष्टिसे वस्तुतः वह गुण ही है। बाण और सुबन्धु कविके सदृश इस काव्यका वर्णित कथाभाग पाठकोंके स्मृतिपटलमें सदा अंकित रहता है। तदानीन्तना व्यवहारोंकी कुटिलताएँ तो इसमें कूट-कूटकर भरी हैं। कुछ लोगोंके विचारसे यह काव्य एक लेखकका लिखा नहीं है। उनके विचारोंसे यह दो कवियोंकी कृति है। वे पूर्वपीठिकाके लेखकको अलग तथा उत्तरपीठिकाके लेखकको अलग मानते हैं। वे लोग कहते हैं कि पूर्वपीठिका और उत्तरपीठिकाके सूक्ष्मनिरीक्षणसे एक दूसरेमें साम्य नहीं है। कुछ विद्वानोंके मतसे तो पूर्वपीठिका और उत्तरपीठिका दण्डीकविनिर्मित हैं ही नहीं। कुछ इतिहासज्ञ तो पद्मनाभ नामक कविको उत्तर पीठिकाका लेखक मानते हैं। अस्तु··· ।

केवल दशकुमारचरितकी तीन टीकाएं हैं :—वे टीकाएं पूर्वपीठिका और उत्तरपीठिकापर नहीं हैं। उनके कर्त्ताओंके नाम तथा टीकाओंके नाम निम्नांकित हैं—शिवराम पण्डितकी 'भूषणा', कवीन्द्राचार्य पण्डितकी 'पदचन्द्रिका' और पण्डित भानुचन्द्रकी 'लघुदीपिका'। ये तीनों टीकाएँ सुप्रसिद्ध हैं। पूर्वपीठिकापर न होनेसे कुछ विद्वानों के मतसे पूर्वपीठिका महाकविदण्डी निर्मित नहीं है।

जो भी हो, प्राचीनताके अनुयायी तो महाकविदण्डी निर्मित पूर्वपीठिका-चरित और उत्तरपीठिका-सहित 'दशकुमारचरित' को मानते हैं। अतः दण्डी कविके ललित पदोंवाले दशकुमारचरितका कौन गद्यकाव्य लालित्य में साम्य कर सकता है?

कृपेच्छु—

—केदारनाथ शर्मा

॥ श्रीः ॥

दशकुमारचरितम्

पूर्वपीठिका

प्रथमोच्छ्वासः

ब्रह्माण्डच्छत्रदण्डः शतधृतिभवनाम्भोरुहो नालदण्डः

❀ अथ बालविबोधिनी ❀

नवनीरधरच्छायां जितपूर्णेन्दुविग्रहाम् ।
नीलां वाऽप्यथवा शुभ्रां काञ्चिदेकां गिरं श्रये ॥
पितरावग्रजन्मानं गुरूंश्चानम्य यत्नतः ।
व्याख्यां दशकुमारस्य कुर्वे बालविबोधिनीम् ॥

आशीर्नमस्क्रिया वस्तुनिर्देशो वापि तन्मुखमित्यनुशासनमनुसरता तत्रभवता कविकुलधौरेयेणाचार्यदण्डिना चिकीर्षितस्य दशकुमारचरिताख्यस्य गद्यकाव्यास्य प्रत्यूहव्यूहविध्वंसनाय भगवच्चरणारविन्दस्मरणरूपं मङ्गलं कर्त्तुमुपक्रम्यते ब्रह्माण्डेत्यादिना ।

❀ बालक्रीड़ा ❀

नवनीत खा, नवनीत सब लाते❀ कहाँसे पात्रमें ।
औ मूकको वाचाल भी करते अहो क्षणमात्रमें ॥
जो विस्मयान्वित वस्तुओंकी शक्तिके कर्त्ता सदा ।
वे कृष्णजी सह राधिका जिह्वाग्रणी हों सर्वदा ॥

संसारमें कार्य-कारण दोनोंका नियतसिद्ध एक सम्बन्ध है ! जिस स्थानमें कार्य रहता है वहीं कारण रहता है क्योंकि कार्य विना कारणके कभी नहीं होता। यदि यह कहा जाय कि, 'कारण रहनेपर कार्य स्वयमेव हो जाता है' तो यह बात भ्रमपूर्ण है एवं अनिश्चित भी है। प्रायः देखा जाता है कि कार्य कारणके रहनेपर भी नहीं होता। अत एव उपर्युक्त बात सर्वथा सत्य है क्योंकि जब कार्य विना कारणके नहीं होता तब कार्यसाधक कोई दैवीशक्ति है जिसे कार्यप्रतिबन्धक भी कहा जा सकता है। उसी दैवीशक्तिके, जो

❀ जो माखन खाकर गोपियोंकी प्रार्थनापर अपनी लीलासे उसी क्षण बरतन भर देते हैं।

क्षोणीनौकूपदण्डः क्षरदमरसरित्पट्टिकाकेतुदण्डः ।
ज्योतिश्चक्राक्षदण्डस्त्रिभुवनविजयस्तम्भदण्डोऽङ्घ्रिदण्डः

अत्र कविना वामनरूपेणावतीर्णस्य भगवतो नारायणस्य बलिनियमार्थमाविष्कृतस्य पादत्रयस्य वर्णनं कृतम् । तेष्वेकः पाद ऊर्ध्वमुत्क्षिप्तः समस्तं गगनं, द्वितीयश्चाधोगतः सम्पूर्णां क्षोणीं, तृतीयः पुनर्नाभितो निर्गतो बलेस्तमाङ्गं समाक्रान्तवानिति पौराणिकी कथा । रूपकेण कविस्तामेव विशिनष्टि—

ब्रह्माण्डं जगदेव छत्रमातपत्रं तस्य दण्ड आधारयष्टिः । भगवतः समस्तजगदाधारत्वात् । एतेनोर्ध्वपादो गम्यते । शतधृतेर्ब्रह्मणो भवनं गृहमाश्रय इत्यर्थः, यदम्भोरुट् कमलं तस्य नालदण्डो वृन्तमूला यष्टिः, अनेन मध्यमपादो गम्यते । क्षोणी क्षितिरेव नौस्तरणिस्तस्याः कूपदण्डो गुणवृक्षः, एतेन भूतलस्थपादो गम्यते । क्षरन्ती प्रवहमाणा याऽमरसरिदाकाशगङ्गा सैव पट्टिका पताका तस्याः केतुदण्डो ध्वजदण्डस्वरूपः अयमप्यूर्ध्वपादः । ज्योतिषां ग्रहनक्षत्रादीनां चक्रं मण्डलमेव चक्रं रथचक्रमित्यर्थः तस्याक्षदण्डः काष्ठदण्डविशेषः । त्रयाणां भुवनानां समाहारः त्रिभुवनं त्रैलोक्यं तस्य यो व्यापनरूपो विजयस्तत्सूचकः स्तम्भदण्डः । विबुधद्वेषिणामसुराणां

कार्यकी प्रतिबन्धक है, दूर हो जानेपर कार्यसिद्धि हो जाती है । वह कार्यप्रतिबन्धक शक्ति ईश्वरानुकम्पासे ही दूर हो सकती है इसी कारण भक्त जन स्वसम्प्रदायानुसार विशेष तथा सामान्य रीतिसे सब-बल एवं भावनाके साथ परमपिता परमेश्वरका या उनकी कृतियोंका आराधन करते हैं । उसी भावमय भक्तिका नाम मंगलाचरण है जो ग्रन्थारम्भ में की जाती है ।

आगामी सृष्टिके सभी लोग—प्राणिमात्र—इस मंगलाचरण से सुन्दर फल प्राप्त करें इसी कारण ग्रन्थकृत् सज्जन अपने-अपने ग्रन्थोंके प्रारम्भमें मंगलाचरण करते हैं, जिसके कारण अध्यापक तथा शिष्यों, पाठक एवं पाठिकाओंको अनायास ही शुभ फलकी प्राप्ति होती है । पूज्यपाद दण्डी कविने भी इसी प्रणालीके आधारपर अपने ग्रन्थ—दशकुमारचरित—की रचनाके आरम्भमें भगवान् वामनके चरणकी वन्दना की, जिससे उनके ग्रन्थकी निर्विघ्न समाप्ति भी हो तथा सुहृदोंको लाभ भी हो। वे अपनी भावमयी भक्ति निम्नरीत्या प्रदर्शित करते हुए भगवान्के चरणकमलोंकी स्तुति करते हैं—

परमपिता परमेश्वर वामन भगवान्का चरणकमलदण्ड आपका तथा पाठक-पाठिकाओंका कल्याण करनेवाला है । जिस समय देवताओंकी कार्यसिद्धिके लिए विष्णु भगवान्ने छद्मवेषी वामनावतार धारण किया था तथा पातालके राजा बलिसे तीन चरण पृथ्वी-दानका संकल्प करा लिया था उस समय राजा बलिको छलसे बन्दी करनेके हेतु उन्होंने तीनों लोकोंको नापनेके लिए अपना चरणरूपमात्र दण्ड बनाया था तथा उसे आकाशतक लम्बायमान कर दिया था । उस समय वह चरण जैसा प्रतीत होता था उसीका वर्णन इस श्लोकमें चित्रित किया गया है ।

श्रेयस्त्रैविक्रमस्ते वितरतु विबुधद्वेषिणां कालदण्डः ॥

कालदण्डो यमदण्डस्वरूपः, त्रिविक्रमस्यायमिति त्रैविक्रमो विष्णुसम्बन्धी अङ्घ्रि-श्चरणो दण्ड इवेत्यङ्घ्रिदण्डश्चरणदण्डस्ते तुभ्यं तव वा श्रेयो मङ्गलं सुकृतं वा वितरतु ददातु । अत्र रूपकालङ्कारसंसृष्टिः । ब्रह्माण्ड-क्षोणी-स्वर्गङ्गासु छत्र-नौ-पट्टिकानामारोपो भगवच्चरणे दण्ड-कूपदण्ड-ध्वजदण्डत्वारोपे हेतुरिति परम्परितरूपकं तच्चाश्लिष्टशब्दनिबन्धनम् । ज्योतिश्चक्राक्षदण्डेत्यत्र तु चक्रशब्दस्य श्लिष्टत्वात् श्लिष्टशब्दनिबन्धनम् । अन्यत्र तु केवलं निरङ्गरूपकम् । तेषाञ्च परस्परनिरपेक्षत्वात् संसृष्टिः । वृत्तञ्चात्र स्रग्धरा ।

वह चरण क्या, मानो ब्रह्माण्डरूपी छत्रका स्वर्णमय दण्ड है । अथवा ब्रह्माके उत्पत्तिस्थानरूपी कमलका नाल-दण्ड है । वा पृथ्वीरूपी नौकाका कूपदण्ड ([1]गुनरखा) है । अथवा स्वर्गसे गिरनेवाली आकाशगंगारूपी पताकाका, केतुदण्ड है । अथवा चन्द्रादि नक्षत्रोंके ज्योतिश्चक्रका अक्षदण्ड है । अथवा भगवान्‌के त्रैलोक्य-विजयको सूचित करनेवाला सूचक स्तम्भ है तथा इन्द्रादि देवोंके शत्रुओंको ताड़ना देनेवाला कालदण्ड है ।

व्युत्पत्ति

इस श्लोकमें प्रतिपादके अन्तमें आठ बार दण्ड शब्द व्यवहृत हुआ है तथा प्रतिपाद के पाँचवें अक्षरके पश्चात् यह शब्द आया है । अतः पादान्त्यानुप्रास और पदान्त्यानुप्रास इसे कहना चाहिये । हिन्दीमें इसे तुकान्त कविता कहा जाता है । परन्तु चौथे पादमें पाँच अक्षरोंके पश्चात् पादान्त्यानुप्रास कुछ शिथिल है क्योंकि वहाँ दण्ड शब्द व्यवहृत नहीं है । प्रति स्थलमें दण्डः शब्द है परन्तु, अङ्घ्रिके पूर्व दण्ड होनेमें स्वरूप-प्रक्रमभंगदोष कहा जा सकता है । यदि प्रकारान्तरसे ये शब्द रचे जायँ तो निर्दोष हो जायँगे ।

तीनों भुवनोंको जीतनेके लिए भगवान् वामनने तीन बार पैरको विस्तृत किया इसी भावको झलकानेके लिए त्रिभुवन एवं त्रैविक्रम पद विशेषणरूपसे योजित किये गये हैं । अतः इसे परिकरालंकार जानना चाहिये । दण्डी कवि भगवान् वामनके चरणकमलोंमें श्रद्धासे नतमस्तक हो रहे हैं । इसने यहाँ शुद्ध भक्ति प्रकट हो रही है अंघ्रि अर्थात् चरण को दण्डरूप मानकर सात स्वरूपोंमें उसे व्यक्त करनेका प्रयास किया गया है जिससे यहाँ रूपकालंकार है । वही रूपक ब्रह्माण्डच्छत्रदण्डः क्षोणीनौकूपदण्डः क्षरदमरसरित्पट्टिकाके दण्डः आदि तीनों चरणोंमें अश्लिष्ट परम्परित है तथा 'ज्योतिश्चक्राक्षदण्डः' में श्लिष्ट-परम्परित है, अन्य शेष स्थलोंमें साधारण है ।

इस सम्पूर्ण ग्रन्थमें पदे-पदे अनुप्रास तथा यमकालंकार आये हैं । अतः उन्हें मैं न

[1] गुनरखा—अनुकूल पवनकी ओर बिना पतवार नौका ले जाते समय जो बाँस जल में फँसाया जाता है उसे मल्लाह लोग गुनरखा कहते हैं ।

(१) अस्ति समस्तनगरीनिकषायमाणा शश्वदगण्यपण्यविस्तारित-मणिगणादिवस्तुजातव्याख्यातरत्नाकरमाहात्म्या मगधदेशशेखरीभूता पुष्पपुरी नाम नगरी ।

(२) तत्र वीरभटपटलोत्तरङ्गतुरङ्गकुञ्जरमकरभीषणसकलरिपुगणकटकजलनिधिमथनमन्दरायमाणसमुद्दण्डभुजदण्डः, पुरन्दरपुराङ्गणवनविहरणपरायणतरुणगणिकागणजेगीयमानयातिमानया शरदिन्दुकुन्दघनसारनीहारहारमृणालमरालसुरगजनीरक्षीरगिरिशाट्टहासकैलासकाशनीकाशमू-

---

(१) अस्तीत्यस्य पुष्पपुरी नाम नगरीत्यनेनान्वयः समस्तानां सकलानां नगरीणां निकषः कषणोपल इवाचरतीति निकषायमाणा सर्वश्रेष्ठादर्शभूता । (अत्रोपमालङ्कारः) शश्वन्निरन्तरम् अगण्यैरसंख्यैः पण्यैः विक्रेयैः विस्तारितैर्विक्रयार्थं प्रसारितैः मणिगणादिवस्तुजातैस्तत्तद्द्रव्यसमूहैः व्याख्यातं प्रकटितं रत्नाकरस्य समुद्रस्येव माहात्म्यं महिमा यस्याः सा, मगधदेशस्य कीकटस्य शेखरीभूता शिरोभूषणरूपा, पुष्पपुरी कुसुमपुरं नाम नगरी अस्ति वर्त्तते यस्याः साम्प्रतिक नाम पाटलिपुत्रमिति ज्ञेयम् ।

(२) तत्र पुष्पपुर्यां, वीराणां शूराणां भटानां योद्धॄणां पटलेन समूहेन उत्तरङ्गः उद्गतवीचिस्तथा—तुरङ्गा अश्वाः कुञ्जरा गजास्ते मकरा नक्रा इव तैर्भीषणो भयङ्करस्तथा सकलानां रिपुगणानां शत्रुमण्डलानां कटकं सैन्यं जलनिधिः समुद्र इव तस्य मथने आलोडने मन्दरायमाणः मन्दराचल इवाचरन् मन्थनदण्डस्वरूपः, समुद्दण्डः समुद्यतो भुजो बाहुर्दण्ड इव यस्य सः । पुरन्दरपुरस्य अमरावत्या अङ्गणवने चत्वरोद्याने नन्दनवने इति यावत्, विहरणपरायणेन भ्रमणशीलेन तरुणगणिकागणेनाप्सरःसमूहेन जेगीयमानया, मुहुर्गीतया, अति सातिशयं मानं परिमाणं यस्यास्तया अपरिमितया, शरदिन्दुः शरच्चन्द्रश्च कुन्दं माध्यकुसुमञ्च घनसारः कर्पूरश्च नीहारो हिमञ्च हारो मौक्तिकस्रक् च मृणालं विसञ्च मरालो हंसश्च सुरगज

लिखूँगा । परन्तु यथाशक्ति अर्थालंकारोंको दिखलानेकी चेष्टा करूँगा ।

[अब मगधदेशाधिपति राजहंसके आधारसे दशकुमारचरित नामक संस्कृत उपन्यासके निर्माता महाकवि दंडी प्रथमतः पुष्पपुरी नामकी मगधेश्वरकी राजधानीका वर्णन करते हैं ।]

(१) भूमण्डलकी समस्त नगरियोंको जाँचनेकी कसौटी तथा असंख्य दूकानोंको फैलाये हुए रत्नादिके द्वारा समुद्रकी मणियोंके महत्त्वको अर्थात् रत्नाकर शब्दको प्रकाशित करानेवाली मगधदेशकी शिरोभूषण पुष्पपुरी नामकी नगरी है ।

(२) उसमें एकबार राजहंस नामक नृपति आविर्भूत हुए । उनका विशाल बाहुदण्ड समस्त शत्रुओंके वीर-भटोंके समूह, चञ्चल घोड़े तथा बड़े-बड़े गजरूपी मकरसे भयंकर

र्त्या रचितदिगन्तरालपूर्त्या कीर्त्याऽभितः सुरभितः, स्वर्लोकशिखरोरुरुचिररत्नरत्नाकरवेलामेखलायितधरणीरमणीसौभाग्यभोगभाग्यवान्, अनवरतयागदक्षिणारक्षितशिष्टविशिष्टविद्यासम्भारभासुरभूसुरनिकरः, विरचितारातिसंतापेन प्रतापेन सतततुलितवियन्मध्यहंसः, राजहंसो नाम घनदर्पकन्दर्पसौन्दर्यसोदर्यहृद्यनिरवद्यरूपो भूपो बभूव ।

ऐरावतश्च नीरं जलञ्च क्षीरं दुग्धञ्च गिरिशस्य महादेवस्याट्टहासो महाहास्यञ्च काशः काशपुष्पञ्च तैर्निकाशा तुल्या मूर्त्तिः स्वरूपं यस्यास्तया, रचिता कृता दिगन्तरालानां दिगवकाशानां पूर्त्तिः पूरणं यया तया, समस्तदिग्व्यापिन्येत्यर्थः, कीर्त्या यशसा अभितः समन्तात् सुरभितो मनोज्ञः, स्वः स्वर्गो लोक आश्रयो येषां ते स्वर्लोका देवास्तेषां शिखरेषु शिरःसु उरूणि महान्ति रुचिराणि मनोहराणि रत्नानि मणयो यस्य तथाभूतस्य रत्नाकरस्य सागरस्य वेलया तटभूम्या मेखलायिता मेखला काञ्ची तयेवाचरिता, वेष्टिता धरणी पृथिव्येव रमणी कामिनी तस्याः सौभाग्यस्य सौन्दर्यस्यैश्वर्यस्य च भोगे उपभोगे भाग्यवान् भाग्यशाली, ससागराया धराया अधीश्वर इत्यर्थः । अनवरतानां निरन्तरमनुष्ठितानां यागानां यज्ञानां दक्षिणाभिर्दत्तद्रव्यरक्षितः पालितः शिष्टानां सदाचारपरायणानां विशिष्टेन अन्यविलक्षणेन विद्यासम्भारेण शास्त्रज्ञानातिरेकेण भासुराणां प्रदीप्तानां भूसुराणां ब्राह्मणानां निकरः समूहो येन सः । विरचितः उत्पादितः । अरातीनां शत्रूणां सन्तापो दुःखं येन तथाविधेन प्रतापेन कोषदण्डजतेजसा सततमनारतं तुलितः समीकृतो वियन्मध्यहंसो मध्याह्नसूर्यो येन सः । प्रतापेन सूर्यसदृश इत्यर्थः । राजहंसो नाम राजहंसाभिधानो, घनः सान्द्रो दर्पोऽहङ्कारो यस्य तस्य महाभिमानवतः कन्दर्पस्य कामस्य यत्सौन्दर्यं रूपं तस्य सोदर्यं सदृशं हृद्यं मनोरमं निरवद्यमनिन्दनीयं निर्दोषमिति यावत् रूपं सौन्दर्यं यस्य स तथाभूतो भूपो राजा बभूव आसीत् ।

सेनासमुद्रको मन्थन करनेके लिए मन्दराचल पर्वतके समान थे । अमरावतीके आँगनमें विहार करनेवाली अप्सराओंसे प्रशंसित एवं अगणित शरत्कालीन चन्द्र तथा कुन्द फूल, कपूर एवं तुषार पुष्पकी माला, कमलका मूल-खण्ड, हंस, ऐरावत (इन्द्रगज), जल, दुग्ध, शङ्करजी का अट्टहास, कैलासपर्वत, काश नामक घास, आदिके सदृश स्वच्छ मूर्तिवाले दशों दिशाओंके अन्तरालको पूर्ण करनेवाली कीर्तिसे अति मनोहर, सुमेरु पर्वतके शिखर के विशाल एवं सुन्दर रत्नोंसे संयुक्त रत्नाकरकी वेलारूपी करधनी (मेखला) से परिवेष्टित पृथ्वीरूपी अंगनाके सौभाग्यका उपभोग करनेवाले, निरन्तर किये गये यज्ञोंकी दक्षिणाओंके द्वारा सदाचारी, उद्भट एवं विद्वान् ब्राह्मणोंके रक्षक रिपुओंके सन्तापकारी,प्रतापमें मध्याह्नकालिक सूर्यके समान, स्वरूपाभिमानी कामदेवको निज रूपसे तिरस्कृतकर्ता राजहंस नामक राजा हुए ।

(३) तस्य वसुमती नाम सुमती लीलावतीकुलशेखरमणी रमणी बभूव ।

(४) रोषरूक्षेण निटिलाक्षेण भस्मीकृतचेतने मकरकेतने तदा भयेनानवद्या वनितेति मत्वा तस्य रोलम्बावली केशजालम्, प्रेमाकरो रजनीकरो विजितारविन्दं वदनम्, जयध्वजायमानो मीनो जायायुतोऽक्षियुगलम्, सकलसैनिकाङ्गवीरो मलयसमीरो निःश्वासः, पथिकहृद्दलनकरवालः प्रवालश्चाधरबिम्बम् जयशङ्खो बन्धुरा लावण्यधरा कन्धरा-

(३) तस्य राजहंसस्य वसुमती नाम सुमती शोभनबुद्धिशालिनी, लीलावतीनां कामिनीनां कुलस्य मण्डलस्य शेखरमणिः शिरोभूषणरूपा, रमणी पत्नी राज्ञीत्यर्थं, आसीत् ।

(४) वसुमतीं विशिनष्टि—रोषेण तपोभङ्गकरणजनितेन कोपेन रूक्षो निष्ठुरस्तेन, निटिले भाले अक्षि चक्षुर्यस्य तेन शिवेन भस्मीकृता विनाशिता चेतना चेतन्यं यस्य तस्मिन्, भस्मीकृते इत्यर्थः, मकरकेतने कामदेवे सति, तदा भस्मीकरणकाले भयेन सहचरनाशजनितसम्भ्रमेण वनिता कामिनी अनवद्या निर्दोषा अतः सैव समाश्रयणीया, निर्दोषां नां महादेवोऽपि न धक्ष्यतीति मत्वा निश्चित्य तस्य मदनस्य रोलम्बावली भ्रमरपङ्क्तिः मौर्वीरूपा तस्या वसुमत्याः केशजालं कुन्तलकलापः समभूदिव, वचनविपरिणामेन सर्वत्रान्वयः । प्रेम्णः आकरः खनिः प्रीत्युत्पादकः, रजनीकरश्चन्द्रः, प्रधानसहायः कामस्य, विजितं कान्त्या तिरस्कृतं अरविन्दं कमलं येन तद् तिरस्कृतकमलमित्यर्थः, तस्या वदनं मुखं (समभूदिव), जयध्वज इवाचरतीति जयध्वजायमानः (केतनं ध्वजमस्त्रियाम्), कामस्य मीनध्वजत्वं प्रसिद्धमेव । जायया स्वपत्न्या युतः समेतो मीनोऽक्षियुगलं तस्या नेत्रद्वन्द्वं (समभूदिव), अत्राक्षियुगलं प्रस्तुतमतो मीनस्यापि जायायुतत्वमपेक्षितम् । सकलसैनिकानां निखिलमदनसैन्यानां अङ्गवीरः प्रधानयोधः, मलयसमीरो दक्षिणानिलः, मलयानिलस्य कामोद्दीपकत्वात् । तस्या निःश्वासः प्राणवायुः, पथिकानां प्रोषितानां हृद्दलने हृदयभेदने करवालः

(३) उनकी वसुमती नामकी महारानी पत्नी थी जो अति सुन्दरी एवं वनिताओं में मुकुटमणि थीं । (सुमती या सुमति दोनों प्रयोग सिद्ध हैं)

(४) एकबार क्रोधसे रक्त नेत्रवाले त्रिनेत्र भगवान्‌ने अपनी नेत्राग्निसे कामदेवको जलाकर भस्म कर दिया । तब कामदेवकी सभी सेनानें मानो भयभीत होकर उस महिला (महारानी) को निर्दोष समझकर अपने-अपने स्वरूपके अनुसार उस महारानीके प्रत्येक अंगोंमें आश्रय लिया । भौंरोंकी श्रेणियोंने केशोंका, प्रेमके आकर चन्द्रने कमलविजयी मुखका, जयध्वज चिह्न अर्थात् सपत्नीक मछली-दम्पतीने नयनयुगलोंका, समस्त सेनामें प्रधान योधा (सेनापति) मलयपवनने मुखपवनका, पथिकोंके हृदयोंको विदारित करनेमें

पूर्णकुम्भौ चक्रवाकानुकारौ पयोधरौ, ज्यायमाने मार्दवासमाने बिसलते च बाहू, ईषदुत्फुल्ललीलावतंसकह्लारकोरको गङ्गावर्तसनाभिर्नाभिः, दूरीकृतयोगिमनोरथो जैत्ररथोऽतिघनं जघनम्, जयस्तम्भभूते सौन्दर्यभूते विघ्नितयतिजनारम्भे रम्भे चोरुयुगम् आतपत्रसहस्रपत्रं पादद्वयम्, अस्त्रभूतानि प्रसूनानि तानीतराण्यङ्गानि च समभूवन्निव ।

कृपाणरूपः नूतनतरुपल्लवदर्शनेन पान्थानां हृदयमतितरां पीड्यते । प्रवालः किसलयश्च अधरबिम्बं तस्या ओष्ठाधरौ, जयशङ्खः कामस्य विजयध्वनिकारकः शङ्खो बन्धुरा उन्नतावनता लावण्यधरा सौन्दर्यशालिनी तस्याः कन्धरा ग्रीवा, पूर्णकुम्भौ कामस्य विजययात्रायामपेक्षितौ जलपूर्णकलशौ चक्रवाकानुकारौ चक्रवाकं पक्षिविशेषं अनुकुरुत इति, तत्सदृशावित्यर्थः, पयोधरौ तस्याः स्तनौ, ज्यायमाने मौर्वीसदृश्यौ, मार्दवे कोमलतायामसमानेऽतुलनीयेऽतिकोमले इति शेषः । बिसलते मृणालद्वयं बाहू तस्या भुजौ, बाह्वोर्मृणालसादृश्यं कविप्रसिद्धम् । ईषत्फुल्लः स्वल्पविकसितो लीलावतंसः कामस्य विलासभूषणं कह्लारकोरकः सौगन्धिककुड्मलो गङ्गायास्तदाख्यप्रसिद्धनद्या आवर्तस्य अम्भसां भ्रमस्य (स्यादावर्तोऽम्भसां भ्रम इत्यमरः । सनाभिः सदृशस्तस्या नाभि, दूरीकृतोपनीतो योगिनां तपश्चारिणां मनोरथो ध्यानाभिलाषो येन स तादृशो जैत्ररथः कामस्य जयनशीलरथः अतिघनमतिनिबिडं जघनं तस्याः कटिपुरोभागः, जयस्तम्भभूते कामस्य विजयस्तम्भस्वरूपे सौन्दर्यभूते मनोरमत्वमधिगते, विघ्नितः विघ्नियुक्तः कृतो यतिजनानां संयमिनामारम्भो ध्यानोद्योगो याभ्यां ते, रम्भे कदल्यौ च तस्या ऊरुयुगं सक्थियुगलम्, आतपत्रं छत्रं तद्रूपं कामस्य सहस्रपत्रं कमलं पादद्वयं तस्याश्चरणयुगलम्, तानि प्रसिद्धानि अस्त्रभूतानि कामस्य बाणभूतानि प्रसूतानि पुष्पाणि अरविन्दादीनि इतराणि पूर्ववर्णितभिन्नानि वसुमत्या अङ्गानि उदरादीनि समभूवन्निव जातानीव (उत्प्रेक्षा) ।

तलवारके समान नये पल्लवोंने अधरोष्ठोंका, विजयशङ्खने निम्नोन्नत लावण्यने ग्रीवा का, दोनों पूर्णकुम्भोंने चक्रवाकके समान दोनों स्तनोंका, धनुषकी प्रत्यंचाने कमलके मृदु तन्तु के समान बाहुओंका, किञ्चित् विकसित लाल-लाल कमलके कर्णाह्लादने गङ्गाके आवर्त-सदृश नाभिका, योगियोंके मनोरथोंको अर्थात् समाधि द्वारा परमब्रह्म परमात्माकी प्राप्ति की अभिलाषाको दूर करनेवाले कामदेवके जैत्ररथने जघनस्थलका, मुनियोंके योगाभ्यासमें विघ्नबाधा उपस्थित करनेवाले केलेके (स्तम्भों) खम्भोंने दोनों जाँघोंका, छत्रके सदृश सहस्रपत्र (कमल) ने दोनों पैरोंका, तथा अन्य पुष्पोंने, जो कामके शस्त्र थे, उसके शेष अंगोंका आश्रय लिया ।

[कामदेवके अस्त्र-शस्त्रोंने उस रानीके अंगोंमें वास कर लिया अर्थात् उस रानीके मुख आदि चन्द्रादिके सदृश थे ।]

(५) विजितामरपुरे पुष्पपुरे निवसता सानन्तभोगलालिता वसुमती वसुमतीव मगधराजेन यथासुखमवन्वभावि ।

(६) तस्य राज्ञः परमविधेया धर्मपालपद्मोद्भवसितवर्मनामधेया धीरधिषणावधीरितविबुधाचार्यविचार्यकार्यसाहित्याः कुलामात्यास्त्रयोऽभूवन् ।

(७) तेषां सितवर्मणः सुमतिसत्यवर्माणौ, धर्मपालस्य सुमन्त्रसुमित्रका पालाः, पद्मोद्भवस्य सुश्रुतरत्नोद्भवाविति तनयाः समभूवन् ।

(८) तेषु धर्मशीलः सत्यवर्मा संसारासारतां बुद्ध्वा तीर्थयात्राभिलाषी देशान्तरमगमत् ।

(९) विटनटवारनारीपरायणो दुर्विनीतः कामपालो जनकाग्रजन्मनोः शासनमतिक्रम्य भुवं बभ्राम ।

---

(५) विजितं सम्मृद्धया तिरस्कृतममरपुरमिन्द्रनगरं येन तस्मिन् । अनन्तभोगेन नानासुखोपभोगेन लालिता पुष्टा । वसुमती पृथिवीव । सापि अनन्तस्य वासुकेः भोगेन फणेन मस्तकेनेति यावत्, लालिता धृता । वसुमती महिषी । मगधराजेन राजहंसेन । अन्वभावि सम्भुक्ता ।

(६) परमविधेया अतिविनीताः । धीरधिषणया अतीक्ष्णबुद्धयाऽवधीरितानि अवज्ञातानि विबुधाचार्यस्य बृहस्पतेरपि विचार्याणां विचारणीयानां कार्याणां साहित्यानि समूहा येस्ते अतीवगम्भीरबुद्धय इत्यर्थः । कुलामात्या वंशपरम्परागतमन्त्रिणः ।

(७) तेषां कुलामात्यानां मध्ये । निर्धारणे षष्ठी ।

(८) संसारस्य असारतां नश्वरतया तुच्छताम् । देशान्तरमन्यदेशम् ।

(९) विटो धूर्तः नटः शैलूषः, वारनारी वेश्या तासु परायणस्तत्पर आसक्त इत्य-

---

(५) इन्द्रपुरीको भी अपनी सुन्दरतासे जीतनेवाली पुष्पपुरी नगरीमें रहते हुए उस राजा राजहंसने अनन्त (शेषनाग) के भोग (फणों) से लालित (धारण की हुई) पृथ्वीके समान परिमित भोग्य पदार्थोंसे प्रमुदित वसुमती रानीके साथ सुखपूर्वक विहार किया ।

(६) उन महाराजके परम विनीत, अपनी गम्भीर बुद्धिसे सुरगुरुको भी विचारणीय कार्य साहित्यमें अनादृत करनेवाले धर्मपाल, पद्मोद्भव और सितवर्मा नामके तीन कुलमन्त्री थे ।

(७) उन मन्त्रियोंमें सितवर्माके सुमति और सत्यवर्मा, धर्मपालके सुमन्त्र, सुमित्र और कामपाल तथा पद्मोद्भवके सुश्रुत और रत्नोद्भव नामक पुत्र हुए ।

(८) उन पुत्रोंमेंसे धर्मशील सत्यवर्मा संसारको असार जानकर, तीर्थाटनकी इच्छासे देशान्तरमें चला गया ।

(९) विट, नट तथा वारविलासिनियों (वेश्याओं) में अनुरागी एवं दुर्विनीत काम-

(१०) रत्नोद्भवोऽपि वाणिज्यनिपुणतया पारावारतरणमकरोत् ।

(११) इतरे मन्त्रिसूनवः पुरन्दरपुरातिथिषु पितृषु यथापूर्वमन्वतिष्ठन् ।

(१२) ततः कदाचिन्नानाविधमहदायुधनैपुण्यरचितागण्यजन्यराजन्यमौलिपालिनिहितनिशितसायको मगधनायको मालवेश्वरं प्रत्यग्रसङ्ग्रामघस्मरं समुत्कटमानसारं मानसारं प्रति 'सहेलं न्यक्कृतजलधिनिर्घोषाहङ्कारेण भेरीझङ्कारेण हठिकाकर्णनाक्रान्तभयचण्डिमानं दिग्दन्तावलवलयं

थं। । दुर्विनीतो दुर्निवारोऽशिष्टो वा । जनकाग्रजन्मनोः पितुर्ज्येष्ठसहृदोरस्य च । शासनमादेशम् ।

(१०) पारावारतरण समुद्रलङ्घनेन द्वीपान्तरगमनम् ।

(११) इतरे अन्ये । पुरन्दरपुरस्य महेन्द्रनगरस्यातिथिषु प्राघुणिकेषु सत्सु, स्वर्गतेषु मृतेषु इति शेषः । यथापूर्वं पितृपुरुषानुक्रमेण । अन्वतिष्ठन्मन्त्रित्वमकुर्वन् ।

(१२) नानाविधानामनेकप्रकाराणां महतां विशालानामायुधानामस्त्राणां नैपुण्येन प्रयोगकौशलेन रचितेषु सम्पादितेषु अगण्येष्वसंख्येषु जन्येषु युद्धेषु राजन्यानां क्षत्रियाणां मौलिपालिषु किरीटप्रान्तभागेषु निहिता निक्षिप्ता निशितास्तीक्ष्णाः सायका बाणा येन सः । विजितानेकभूपाल इत्यर्थः । मगधनायको राजहंसः । मालवेश्वरं मालवाधिपतिम् । प्रत्यग्रे नवीने संग्रामे युद्धे घस्मरं घस्मरभक्षणशीलम् । समुत्कटोऽतिशयितो मानो बलगर्व एव सारः स्थिरांशो यस्य तम् । मानसारं तन्नामानं नरपतिं प्रति लक्ष्यीकृत्य । सहेलं सावज्ञम् । न्यक्कृतस्तिरस्कृतो जलधेः सागरस्य निर्घोषाहङ्कारो निर्घोषविषयेऽभिमानो येन तथाविधेन भेरीझङ्कारेण दुन्दुभिशब्देन हठिकाकर्णनात् सहसा श्रवणात् आक्रान्तः प्राप्तो भयस्य चण्डिमा चण्डत्वं यं तम् । दिशां ये दन्तावला गजा ऐरावतादयस्तेषां वलयं मण्डलं विघूर्णयन् सञ्चालयन् ।

पाल अपने पिता तथा बड़े भाइयोंकी शिक्षाओंका अनादर करके भूलोकमें इतस्ततः भ्रमण करने लगा ।

(१०) रत्नोद्भव व्यापारमें कुशल होकर समुद्र पार कर द्वीप-द्वीपान्तोंमें यात्रा करने चला गया ।

(११) अन्य शेष मन्त्रियोंके पुत्र अपने-अपने पिताओंकी मृत्युके पश्चात् उनके स्थानमें—पिताओंके पदोंपर—कार्य करने लगे ।

(१२) तब एक बार, अनेक प्रकारके शस्त्रोंकी कलाओंमें निपुण एवं कई बार युद्ध करनेमें प्रवीण, नृपतियोंके सिरोंमें तेज-तेज बाण मारनेवाले मगधदेशाधिपति, थोड़े ही दिनों पहले समरमें विजय प्राप्त करनेवाले प्रबलाभिमानी मालवेश्वर मानसारके ऊपर कोप

विघूर्णयन्निजभरनमन्मेदिनीभरेणायस्तभुजगराजमस्तकबलेन चतुरङ्गब-
लेन संयुतः सङ्ग्रामाभिलाषेण रोषेण महताविष्टो निर्ययौ।

(१३) मालवनाथोऽप्यनेकानेकपयूथसनाथो विग्रहः सविग्रह इव
साग्रहोऽभिमुखीभूय भूयो निर्जगाम।

(१४) तयोरथ रथतुरगखुरक्षुण्णक्षोणीसमुद्भूते करिघटाकटस्रव-

निजभरेण स्वभारेण नमन्त्या अधोगच्छन्त्याः पृथिव्या भरेण भारेण। अत्र करणे
तृतीया। आयस्तं क्लिष्टमतिपीडितं भुजगराजस्य वासुकेर्मस्तकबलं शिरसां धारण-
सामर्थ्यं येन तथाभूतेन, अत्र कर्त्तरि तृतीया। चतुरङ्गबलेन गजवाजिरथपदातिरूप-
चतुर्विधसैन्येन संयुतः सहितः। संग्रामाभिलाषेण युद्धाकाङ्क्षया। महता अतिश-
यितेन रोषेण क्रोधेनाविष्टः समाक्रान्तः सन्। मगधराजो निर्ययौ निर्जगाम। युद्धमा-
योधनं जन्यम्। मौलिः किरीटे धम्मिल्ले चूडायाम्। पालिः कर्णलतायां स्यात्प्रदेशे
पंक्तिचिह्नयोः। दन्ती दन्तावलो हस्तीति च कोशः। (अत्र असम्बन्धे सम्बन्ध
रूपातिशयोक्तिरनुप्रासश्चेत्यनयोः संसृष्टिः। घस्मर इत्यत्र च 'सघस्यदः क्मरच्'
इत्यनेन क्मरच्)।

(१३) मालवनाथः मानसारः। अनेकैरसंख्यातैः अनेकपानां हस्तिनां यूथैः स-
मूहैः सनाथो युक्तः। द्विरदोऽनेकपो द्विप इत्यमरः। विग्रहः समरः। सविग्रहः सश-
रीरः मूर्त्तिमान्। साग्रहः युद्धाभिनिवेशवान्। भूयः पुनरपि*।

(१४) अथ निर्गमनानन्तरम्। तयोर्मगधराजमालवराजयोः। रथैः रथचक्रैः तुरगाणां
अश्वानां खुरैः शफैः क्षुण्णायाः पिष्टायाः क्षोण्याः पृथिव्याः समुद्भूते उत्थिते उत्पन्ने वा
धूलीपटले इत्यस्य विशेषणम्। करिघटानां हस्तिमूहानां कटेभ्यो गण्डेभ्यः स्रवन्त्यः

करके समुद्रके महाघोषको तिरस्कृत करनेवाले, दुंदुभियोंकी ध्वनियोंको हठात् श्रवण
करनेसे भयभीत दिग्गजोंको कँपानेवाले, अपने भारसे दबी हुई पृथ्वीके भारसे भुजंगराजके
मस्तकको व्यथित करनेवाली चतुरंगिणी—हाथी, घोड़े, पैदल और शस्त्रोंसे सज्जित—
सेना लेकर, युद्धार्थ निकल पड़े।

(१३) शरीरधारी संग्रामस्वरूप मालवेश्वर भी अनेक हाथियोंकी सेनाको लेकर
आग्रहके साथ युद्धके लिये पुनः अपने पुरसे निकल पड़ा।

(१४) उसके पश्चात् उन दोनोंमें संग्राम छिड़ गया। उस युद्धकालमें रथोंके पहियोंसे
तथा घोड़ोंके खुरोंसे चूर्ण की हुई पृथ्वीसे उत्पन्न धूलि एवं हाथियोंके कपोलोंसे बहनेवाली
मदधारासे सिक्त धूलिपटल नूतन वस्त्रों को वरण करनेके निमित्त आयी देव-कन्याओंके

---

* उत्प्रेक्षानुप्रासयोः सङ्करः।

न्मदधाराधौतमूले नव्यवल्लभवरणागतदिव्यकन्याजनजवनिकापटमण्डप इव वियत्तलव्याकुले धूलीपटले दिविषदध्वनि धिक्कृतान्यध्वनिपटहध्वान-बधिरिताशेषदिगन्तरालं शस्त्राशस्त्रि हस्ताहस्ति परस्पराभिहतसैन्यं जन्यमजनि।

(१५) तत्र मगधराजः प्रक्षीणसकलसैन्यमण्डलं मालवराजं जीव-ग्राहमभिगृह्य कृपालुतया पुनरपि स्वराज्ये प्रतिष्ठापयामास।

(१६) ततः स रत्नाकरमेखलामिलामनन्यशासनां शासदनपत्यतया

क्षरन्त्या मदधारया मदजलप्रवाहेण धौतं क्षालितं मूलं मूलदेशो यस्य तस्मिन्। नव्यवल्लभानां नवीनरमणानां वरणाय आगतस्य युद्धक्षेत्रे समुपस्थितस्य दिव्य-कन्याजनस्याप्सरः समूहस्य जवनिकया तिरस्करिण्या युक्तः पटमण्डपः पटवासस्त-स्मिन्निव। वियत्तलव्याकुले नभस्तलसम्भृते। धूलीपटले पांशुसमूहे। दिवि सीदन्ति ये ते दिविषदो देवास्तेषामध्वनि मार्गे आकाशे इत्यर्थः। धिक्कृतस्तिरस्कृतः दूरी-कृत इति यावत्, अन्येषां ध्वनिः शब्दो येन तादृशेन पटहध्वानेन ढक्काशब्देन बधिरितानि बधिरीकृतानि अशेषाणि दिगन्तरालानि तत्रस्थजना इत्यर्थः यस्मिन् तत्। शस्त्रैः शस्त्रैश्च प्रहृत्य यद्युद्धं प्रवृत्तमिति शस्त्राशस्त्रि। हस्तैश्च हस्तैश्च प्रहृत्य यत्प्रवृत्तं तद् हस्ताहस्ति। परस्परस्य अभिहतं समाक्रान्तं सैन्यं यस्मिन् तत्। जन्यं युद्धम्।

(१५) तत्र युद्धे। प्रक्षीणं हतं विध्वस्तं सकलं समस्तं सैन्यमण्डलं यस्य तम्। जीवग्राहमभिगृह्य जीवन्तमेव धृत्वा।

(१६) रत्नाकरः समुद्रो मेखला रशना यस्यास्ताम्। ससागरामित्यर्थः। इलां पृथ्वीम्। अनन्यशासनां—न विद्यतेऽन्यस्य नृपस्य शासनं यस्यां ताम्। अनपत्यतया

लिए पटमंडप (परदा) काम करने लगी अर्थात् धूलि-पटल आकाशमें फैल गया।

अन्य सभी शब्दोंको दबानेवाली युद्धकी वाद्यध्वनियाँ समस्त दिशाओंमें गूँज गयीं—जिससे सम्पूर्ण दिशायें ऐसी बहिरी हो गयीं कि कुछ सुनाई ही न देता था। उस युद्धमें योद्धागण शस्त्रसे शस्त्र और हाथमें हाथ मिलाकर परस्पर मार-काट करनेमें तल्लीन थे।

(१५) उस तुमुल संग्राममें मगधराजने मालवराजकी समस्त सेना नष्ट कर दी और मालवेश्वर मानसारको जीते जी पकड़ लिया तथा पुनः दया करके उसे उसीके राज्यपर प्रतिष्ठित कर दिया।

(१६) तब वे मगधाधिपति जो समुद्र पर्यन्त पृथ्वीका शासन करते थे, अनपत्य होनेके

नारायणं सकललोकैककारणं निरन्तरमर्चयामास ।

(१७) अथ कदाचित्तदग्रमहिषी 'देवि देवेन कल्पवल्लीफलमाप्नुहि' इति प्रभातसमये सुस्वप्नमवलोकितवती ।

(१८) सा तदा दयितमनोरथपुष्पभूतं गर्भमधत्त ।

(१९) राजापि सम्पन्न्यक्कृताखण्डलः सुहृन्नृपमण्डलं समाहूय निजसम्पन्मनोरथानुरूपं देव्याः सीमन्तोत्सवं व्यधत्त ।

(२०) एकदा हितैः सुहृन्मन्त्रिपुरोहितैः सभायां सिंहासनासीनो गुणैरहीनो ललाटतटन्यस्ताञ्जलिना द्वारपालेन व्यज्ञापि—'देव ! देवसन्दर्शनलालसमानसः कोऽपि देवेन विरच्यार्चनार्हो यतिर्द्वारदेशमध्यास्ते' इति ।

पुत्रकतया । एककारणमादिहेतुम् । गौरिला कुम्भिनी क्षमेत्यमरः ।

(१७) तस्य राजहंसस्य । अग्रमहिषी प्रधानराज्ञी । देवेन राज्ञा सह । कल्पवल्लीफलं कल्पलताफलम् ।

(१८) दयितस्य वल्लभस्य यो मनोरथः पुत्रप्राप्तिरूपोऽभिलाषस्तदेव फलं तस्य पुष्पभूतं कुसुममिव भूतम् ।

(१९) सम्पदा समृद्धया न्यक्कृतस्तिरस्कृत आखण्डल इन्द्रो येन सः । समृद्धया महेन्द्रादप्यधिकः । सुहृदां मित्रभूतानां नृपाणां मण्डलं समूहम् । स्वस्य सम्पदः समृद्धेः मनोरथस्याभिलाषस्य चानुरूपं सदृशम् । सीमन्तोत्सवं संस्कारविशेषम् ।

(२०) हितैः हितकाङ्क्षिभिः । गुणैः राजगुणैरहीनोऽन्यूनः सर्वगुणसम्पन्न इत्यर्थः । ललाटतटे भालदेशे न्यस्तो धृतोऽञ्जलिर्येन तेन । व्यज्ञापि निवेदितः । देवस्य भवतः सन्दर्शनेऽवलोकने लालसमभिलाषि मानसं यस्य सः । देवेन भवता । विरच्यां कर्त्तव्यां अर्चनां पूजामर्हतीति । भवतोऽपि पूज्य इत्यर्थः । यतिः संन्यासी ।

कारण सम्पूर्ण लोकोंके आदिकारण नारायण भगवान् की निरन्तर पूजामें संलग्न हो गये ।

(१७) एक दिन प्रातःकाल उनकी महारानीने स्वप्नमें देखा कि उनसे किसीने आकर कहा—'हे देवि ! देव (राजा) द्वारा प्रदत्त कल्पवृक्षका यह फल आप ग्रहण करें ।'

(१८) उसके बाद उस महिषीने पतिके मनोरथ-पुष्पभूत गर्भको धारण किया ।

(१९) अपने ऐश्वर्य—विभवसे इन्द्रको भी पराभव दिखानेवाले उन राजा हंसवाहनने सुहृद् राजाओंके मण्डलोंको बुलाकर अपने मनोरथ तथा विभवानुसार महारानीका सीमन्तोन्नयन संस्कार किया ।

(२०) एक दिन सर्वगुणसम्पन्न मगधपति अपने हितैषी मित्रों एवं मन्त्रियों तथा पुरोहितोंके साथ राजसभामें सिंहासनासीन थे । उसी समय द्वारपालने राजसभामें आकर प्रण

(२१) तदनुज्ञातेन तेन स संयमी नृपसमीपमनायि ।

(२२) भूपतिरायान्तं तं विलोक्य सम्यग्ज्ञाततदीयगूढचारभावो निखिलमनुचरनिकरं विसृज्य मन्त्रिजनसमेतः प्रणतमेनं मन्दहासमभाषत—'ननु तापस ! देशं सापदेशं भ्रमन्भवांस्तत्र तत्र भवदभिज्ञातं कथयतु' इति ।

(२३) तेनाभाषि भूभ्रमणबलिना प्राञ्जलिना—'देव ! शिरसि देवस्याज्ञामादायैनं निर्दोषं वेषं स्वीकृत्य मालवेन्द्रनगरं प्रविश्य तत्र गूढतरं वर्तमानस्तस्य राज्ञः समस्तमुदन्तजातं विदित्वा प्रत्यागमम् ।

(२४) मानी मानसारः स्वसैनिकायुष्मत्तान्तराये संपराये भवतः

---

(२१) तदनुज्ञातेन राज्ञादिष्टेन । तेन द्वारपालेन । संयमी यतिः । अनायि नीतः।

(२२) सम्यक् सुष्ठु ज्ञातोऽवगतस्तदीयस्तत्सम्बन्धी गूढः प्रच्छन्नश्चारभावः चरत्वं येन सः । प्रणतं कृतनमस्कारम् । एनं यतिम् । मन्दहासं क्रियाविशेषणमिदम् । ईषद् हसन्नित्यर्थः । सापदेशं सकपटम् । यतिवेषच्छलेनेत्यर्थः । तत्र तत्र तेषु तेषु स्थानेषु । भवता त्वया अभिज्ञातमवगतम् ।

(२३) अभाषि कथितम् । भुवः पृथिव्याः भ्रमणे पर्यटनविषये बली समर्थस्तेन । प्राञ्जलिना बद्धाञ्जलिनेति तेनेत्यस्य विशेषणम् । देव राजन् । आदायाङ्गीकृत्य निर्दोषं दोषवर्जितम् । वेषं यतिरूपम् । तत्र मालवेन्द्रनगरे । गूढतरमतिशयेन गूढं यथा स्यात्तथा । उदन्तजात वृत्तान्तसमूहम् ।

(२४) स्वसैनिकानां निजभटानामायुष्मत्ताया आयुष्यस्यान्तरायो विघ्नस्तस्मिन्

करके कहा—हे स्वामिन् ! आपके द्वारा भेजे हुए कोई संन्यासी आपसे भेंट करने द्वारपर आकर उपस्थित हुए हैं ।

(२१) राजाज्ञा होनेपर द्वारपाल उस संन्यासीको राजसभामें राजाके पास ले आया ।

(२२) राजाने उसे देखकर तथा भली भाँति यह ज्ञात करके कि यह तो हमारा गुप्तचर है, राजसभासे सभी नौकर-चाकरोंको हटवा दिया । पुनः मन्त्रियोंसहित प्रणाम करके हँसकर पूछा—हे यतिवर ! इस छद्मवेशमें देशमें विचरण करते हुए आपने जो बात जानी हो वह कह दें ।

(२३) पृथ्वीभ्रमणमें समर्थ उस यतिने प्राञ्जलि होकर कहा—'हे देव ! आपकी आज्ञाको शिरोधार्य करके मैं इस निर्दोष वेषको धारणकर मालवेशके नगरमें प्रविष्ट हुआ । वहाँपर गुप्तरूपसे निवासकर समस्त वृत्तान्तको ज्ञात करके आया हूँ ।

(२४) सच यह है कि अभिमानी मानसार युद्धमें अपने वीरोंके नाशसे तथा आपद्वारा

पराजयमनुभूय वैलक्ष्यलक्ष्यहृदयो वीतदयो महाकालनिवासिनं कालीविलासिनमनश्वरं महेश्वरं समाराध्य तपःप्रभावसंतुष्टादस्मादेकवीरारातिघ्नीं भयदां गदां लब्ध्वात्मानमप्रतिभटं मन्यमानो महाभिमाना भवन्तमभियोक्तुमुद्युङ्क्ते । ततः परं देव एव प्रमाणम्' इति ।

(२५) तदालोच्य निश्चिततत्कृत्यरमात्यै राजा विज्ञापितोऽभूत्—'देव, निरुपायेन देवसहायेन योद्धुमरातिरायाति । तस्मादस्माकं युद्धं सांप्रतमसांप्रतम् । सहसा दुर्गसंश्रयः कार्यः' इति ।

(२६) तैर्बहुधा विज्ञापितोऽप्यखर्वेण गर्वेण विराजमानो राजा तद्वा-

---

सैन्य संहारकारिणि इति तात्पर्यम् । संपराये युद्धे । 'युद्धायत्योः संपराय इत्यमरः' । वैलक्ष्यस्य पराजयजनितदैन्यस्य लक्ष्यं विषयीभूतं हृदयं यस्य सः । वीतदयो निर्दयः । महाकाले तदाख्यस्थाने निवासोऽस्त्यस्येति तम् । कालीविलासिनं पार्वतीवल्लभम् । अनश्वरं विनाशरहितम् । तपसः प्रभावेण सन्तुष्टात् प्रीतात् । अस्मान्महेश्वरात् । एकमेकसंख्यकं वीरं शूरम् अरातिं शत्रुं हन्तीति ताम् । भयदां भीतिदात्रीम् । अप्रतिभटमप्रतिद्वन्द्विनम् । महानतिशयितोऽभिमानोऽहङ्कारो यस्य सः । अभियोक्तुमाक्रमितुम् । उद्युङ्क्ते चेष्टते । देव एव भवानेव । प्रमाणं कर्तव्यतानिर्णायकः ।

(२५) तत्र शत्रुविषये यत्कृत्यं करणीयं तन्निश्चितं निर्णीतं यस्तैः । अमात्यैर्मन्त्रिभिः । निर्नास्त्युपायः प्रतीकारो यस्य तेन, अप्रतिकार्येणेत्यर्थः । असाम्प्रतमयुक्तम् । युक्ते द्वे साम्प्रतमित्यमरः । सहसा सत्वरम् । दुर्गसंश्रयः दुर्गप्रवेशः ।

(२६) बहुधा बहुप्रकारेण । अखर्वेण महता । अकृत्यमननुष्ठेयं कर्तुमनुचितं

युद्धमें पराजित होकर लज्जित हो गया अतएव अति दीन होकर कायिक, वाचिक, मानसिक कार्योंको संस्मरण करता हुआ वह महाकालनिवासी (उज्जैनके महाकालके भव्य मन्दिरमें) कालीविलासी अनश्वर श्रीमहेश्वरकी प्रबल आराधना करके तथा उन्हें सन्तुष्ट एवं प्रसन्न करके अपनी तपस्याके प्रभावसे उन्हीं शङ्करजीसे एक अनुपम गदा प्राप्त कर चुका है । उस गदाद्वारा वह युद्धमें एकप्रधान वीर सेनाधिपको मार सकता है । बस, उक्त गदाके अभिमानपर वह आपसे संघर्षका उद्योग कर रहा है—इसके बाद क्या करना चाहिये इसे आप विचार लें ।

(२५) इस वृत्तान्तको श्रवणकर मन्त्रियोंने विचार-विनिमयकर महाराजसे निवेदित किया—'हे देव ! जिसमें मनुष्यके सभी उपाय विफल हैं ऐसे प्रबल यत्नसे अर्थात् शङ्करजीकी गदाके प्रभावसे शत्रु युद्ध करने आ रहा है अतः ऐसे समय उसके साथ हमारा युद्ध करना निष्फल होगा । ऐसे समय दुर्गका ही आश्रयण सर्वथा श्रेयस्कर होगा ।'

(२६) मन्त्रियोंके बार-बार उक्त रीतिसे समझानेपर भी राजा अपने पराक्रमके गर्वपर

कथमकृत्यमित्यनादृत्य प्रतियोद्धुमना बभूव ।

(२७) शितिकण्ठदत्तशक्तिसारो मानसारो योद्धुमनसामग्रीभूय सामग्रीसमेतोऽक्लेशं मगधदेशं प्रविवेश ।

(२८) तदा तदाकर्ण्य मन्त्रिणो भूमहेन्द्रं मगधेन्द्रं कथंचिदनुनीय रिपुभिरसाध्ये विन्ध्याटवीमध्येऽवरोधान्मूलबलरक्षितान्निवेशयामासुः ।

(२९) राजहंसस्तु प्रशस्तवीतदैन्यसैन्यसमेतस्तीव्रगत्या निर्गत्याधिकरुषं द्विषं रुरोध ।

(३०) परस्परबद्धवैरयोरेतयोः शूरयोस्तदा तदालोकनकुतूहलागतगगनचराश्चर्यकारणे रणे वर्तमाने जयाकाङ्क्षी मालवदेशरक्षी विविधायुध-

---

दौर्बल्यप्रकाशकत्वादित्यर्थः । अनादृत्य अस्वीकृत्य । प्रतियोद्धुमना युद्धाभिलाषी ।

(२७) शितिकण्ठेन शिवेन दत्तार्पिता शक्तिः प्रहरणविशेष एव सारो बलं यस्य सः । योद्धुमनसां युद्धाकाङ्क्षिणाम् । अग्रीभूय पुरो भूत्वा । सामग्रीसमेतः युद्धोपकरणसहितः ।

(२८) भूमहेन्द्रं पृथिवीन्द्रम् । कथञ्चिदतियत्नेन । असाध्ये दुष्प्रवेश्ये । अवरोधान् राजस्त्रियः मूलबलेन प्रधानसैन्येन रक्षितान् गुप्तान् निवेशयामासुः स्थापयामासुः ।

(२९) प्रशस्तैरत्युत्कृष्टैर्वीतदैन्यैस्त्यक्तकार्पण्यैः निर्भयैरित्यर्थः । सैन्यैः समेतो युक्तः । तीव्रगत्या महता वेगेनेत्यर्थः । अधिकरुषं अतिक्रुद्धम् ।

(३०) परस्परेण बद्धं धृतं वैरं याभ्यां तयोः । तस्य युद्धस्यालोकने दर्शने यत्कुतूहलं कौतुकं तेनागतानां युद्धक्षेत्रे समुपस्थितानां गगनचराणामाकाशचारिणां देवानां आश्चर्यकारणे विस्मयहेतुभूते । मालवदेशस्य रक्षी रक्षिता मानसारः । विवि-

---

समरमें जानेको तैयार हो गया ।

(२७) मानी मानसार भी शङ्करजीकी दी हुई अमोघ शक्तिपर सम्पूर्ण वीरोंमें प्रमुख होकर विना क्लेशके युद्धसामग्रीके सहित मगध देशमें घुस आया ।

(२८) मानसारके आगमनकी चर्चा श्रवण करके मन्त्रियोंने पृथ्वीके स्वामी इन्द्रके तुल्य मगधेन्द्रको समझा-बुझाकर येन केन प्रकारेण राजमहल (अन्तःपुर) की स्त्रियोंको मुख्य सेनाकी रक्षामें विन्ध्यपर्वतकी अटवीके मध्यमें भिजवा दिया ।

(२९) नृपति राजहंस दैन्यशून्य सेनाको अपने साथ लिए बड़ी तीव्रगतिसे अपनी राजधानीसे बाहर आया और अति क्रोधसे आती हुई शत्रुसेनाको घेर लिया ।

(३०) परस्पर बद्धवैर इन दोनों शूरोंके उस संग्रामको देखनेके निमित्त आये आकाशगामी जनोंको भी यह युद्ध आश्चर्यका कारण हुआ । उस समय [illegible] तथा विजयाकांक्षी

स्थैर्यचर्याञ्चितसमरतुलितामरेश्वरस्य मगधेश्वरस्य तस्योपरि पुरा पुरारातिदत्तां गदां प्राहिणोत् ।

(३१) निशितशरनिकरशकलीकृतापि सा पशुपतिशासनतयावन्ध्यतया सूतं निहत्य रथस्थं राजानं मूर्छितमकार्षीत् ।

(३२) ततो वीरप्रग्रहा अक्षतविग्रहा वाहा रथमादाय दैवगत्यान्तःपुरशरण्यं महारण्यं प्राविशन् ।

(३३) मालवनाथो जयलक्ष्मीसनाथो मगधराज्यं प्राज्यं समाक्रम्य पुष्पपुरमध्यतिष्ठत् ।

(३४) तत्र हेतिततिहतिश्रान्ता अमात्या दैवगत्यानुत्क्रान्तजीविता

धानां नानाप्रकाराणामायुधानामस्त्राणां स्थैर्येण स्थिरतया चर्यया प्रयोगेणाञ्चिते युक्ते समरे तुलितः समीकृतोऽमरेश्वर इन्द्रो येन तस्य । पुरा प्राक् । पुरारातिदत्तां महेश्वरार्पिताम् । प्राहिणोत् न्यक्षिपत् प्राहरदित्यर्थः ।

(३१) निशितेन तीक्ष्णेन शरनिकरेण बाणसमूहेन शकलीकृता खण्डीकृतापि । सा गदा । पशुपतिशासनस्य शिववाक्यस्य । अवन्ध्यतया अव्यर्थतया । सूतं सारथिम् ।

(३२) वीता मुक्ताः प्रग्रहा रश्मयो येषां । ते अक्षतो विग्रहः शरीरं येषां ते । वाहा अश्वाः । 'वाजिवाहार्वगन्धर्वे'त्यमरः । अन्तःपुरशरण्य राजस्त्रीणामाश्रयभूतम् ।

(३३) जयलक्ष्म्या विजयश्रिया सनाथो युक्तः । प्राज्यं प्रभूतं विशालमित्यर्थः ।

(३४) तत्र महारण्ये । हेतीनामस्त्राणां ततिभिः समुदायैर्हत्या प्रहारेण श्रान्ताः क्लान्ताः । दैवगत्या शुभादृष्टवशेन । अनुत्क्रान्तं न निर्गतं जीवितं प्राणा

मालवेश राजा मानसारने अनेकों प्रकारके शस्त्रोंके प्रयोग करनेमें निपुण एवं इन्द्रके समान योद्धा मगधेन्द्रके ऊपर महेश्वरसे प्राप्त गदा मार दी ।

(३१) यद्यपि मगधेशने अपने तीक्ष्ण बाणोंके प्रहारोंसे उस गदाको खण्ड-खण्ड कर काट दिया । परन्तु भगवान् शिवजीके प्रभावसे उस गदाने रथके सारथीको मारकर मगधेशको भी मूर्च्छित कर दिया ।

(३२) तब रथके घोड़ोंने, जो वीत-प्रग्रह (बेलगाम) तथा अक्षतविग्रह थे, उस रथको खींचते-खींचते उसी स्थानपर सौभाग्यसे ला दिया जहाँपर अन्तःपुरकी रमणियाँ सेनाके रक्षामें थीं—अर्थात् विन्ध्याटवी पहुँचा दिया ।

(३३) मालवेशने भी विजयश्रीको प्राप्त करके प्रवृद्ध राज्य मगधकी राजधानी पुष्पपुरीमें प्रवेश किया और राज्यशासन करने लगा ।

(३४) युद्धमें शस्त्रोंके प्रहारोंसे ताडित होकर मूर्च्छित परन्तु दैवगतिसे जीवित रक्षित

निशान्तवातलब्धसंज्ञाः कथंचिदाश्वस्य राजानं समन्तादन्वीक्ष्यानवलोकितवन्तो दैन्यवन्तो देवीमवापुः ।

(३५) वसुमती तु तेभ्यो निखिलसैन्यक्षतिं राज्ञोऽदृश्यत्वं चाकर्ण्योद्विग्ना शोकसागरमग्ना रमणानुगमने मतिं व्यधत्त ।

(३६) 'कल्याणि भूरमणमरणमनिश्चितम् । किञ्च दैवज्ञकथितो मथितोद्धतारातिः सार्वभौमोऽभिरामो भवति सुकुमारः कुमारस्त्वदुदरे वसति । तस्मादद्य तव मरणमनुचितम्' इति भूषितैर्भाषितैरमात्यपुरोहितैरनुनीयमानया तया क्षणं क्षणहीनया तूष्णीमस्थायि ।

येषां ते । निशान्तवातेन प्राभातिकवायुना लब्धा पुनः प्राप्ता संज्ञा चैतन्यं यैस्ते । समन्तादितस्ततः । अन्वीक्ष्य अन्विष्य । दैन्यवन्तोऽतिविषण्णाः । देवीं महिषीं वसुमतीम् ।

(३५) तेभ्योऽमात्येभ्यः । तत्सकाशादित्यर्थः । निखिलसैन्यक्षतिं सकलसैन्यविनाशम् । अदृश्यत्वमन्तर्धानम् । आकर्ण्य श्रुत्वा । उद्विग्ना व्याकुला । रमणानुगमने पतिमनुमरणे मतिं व्यधत्त निश्चयं कृतवती ।

(३६) कल्याणि हे मङ्गलमयि ! राज्ञीसम्बोधनमेतत् । भूरमणस्य राज्ञो मरणं मृत्युः दैवज्ञैर्ज्यौतिषिकैः । कथित आदिष्टः । मथिता मर्दिता उद्धता दृप्ता अरातयः शत्रवो येन सः । मथिष्यमाणा इत्यर्थे मथिता इति । सार्वभौमश्चक्रवर्ती । अभिरामो मनोहरः । भविता भावी जनिष्यमाण इत्यर्थः । सुकुमारः कोमलः । कुमारः पुत्रः । तस्मात् गर्भवत्त्वात् । अनुचितमयुक्तम् । भूषितमलङ्कृतं शोभनमिति भावः भाषितं कथनं येषां तैः । क्षणहीनया उत्सवशून्यया । अस्थायि स्थितम् । स्थाधातोर्भावलुङ् ।

प्रातःकालिक शीतल पवनके स्पर्शसे उद्बोधित होकर स्वस्थ हो गये । और चारों ओर राजा राजहंसको खोजने लगे । किन्तु, जब वे उन्हें न पा सके तो खिन्न होकर महारानीके समीप पहुँचे ।

(३५) महारानी वसुमती सेनाकी क्षति तथा राजाकी अदृश्यताकी बातें मन्त्रियोंके मुखोंसे जानकर अति दुःखी हुईं और उद्विग्नमनसे शोकसागरमें निमग्न होकर पतिका अनुगमन करनेका निश्चय कर लिया—मरनेको उद्यत हो गयीं ।

(३६) इसपर अमात्योंने एकत्र होकर कहा—'हे कल्याणि ! प्रथमतः तो राजाका मरण अनिश्चित है तथा दूसरे दैवज्ञोंके कथनानुसार आपके उदरमें सुकुमार राजकुमार है जो चक्रवर्ती एवं शत्रुओंको नाश करनेवाला होगा । अतः आपका मरना इस समय अनुचित है । इस प्रकारके प्ररोचक वचनोंको श्रवणकर मन्त्रियों और पुरोहितोंके समझाने पर रानी वसुमती उत्सवहीना होकर कुछ भी उत्तर न दे सकीं । चुप होकर बैठी रहीं ।

(३७) अथार्धरात्रनिद्रानिलीननेत्रे परिजने विजने शोकपारावारमपारमुत्तर्तुमशक्नुवता सेनानिवेशदेशं निःशब्दलेशं शनैरतिक्रम्य यस्मिन्रथस्य संसक्ततया तदानयनपलायनश्रान्ता गन्तुमक्षमाः क्ष्मापतिरथ्याः पथ्याकुलाः पूर्वमतिष्ठंस्तस्य निकटवटतरोः शाखायां मृतिरेखायामिव कचिदुत्तरीयार्धेन बन्धनं मृतिसाधनं विरच्य मत्कामाभिरामा वाङ्माधुरीविरसीकृतकलकण्ठकण्ठा साश्रुकण्ठा व्यलपत्—'लावण्योपमितपुष्पसायक, भूनायक, भवानेव भाविन्यपि जन्मनि वल्लभो भवतु' इति ।

(३८) तदाकर्ण्य नीहारकरकिरणनिकरसंपर्कलब्धावबोधो मागधो-

---

(३७) अर्धरात्रे निशीथे । निद्रया निलीने परिमिलिते नेत्रे नयने यस्य तस्मिन् । परिजनेऽनुचरमण्डले । विजने निर्जने एकान्ते इत्यर्थः । शोकपारावारं शोकसागरम् । अपारं दुस्तरम् उत्तर्तुं लङ्घयितुम् । सेनानिवेशस्य शिविरस्य देशं प्रदेशम् । निर्नास्ति शब्दस्य लेशो लवोपि यस्मिंस्तद् यथा तथा । संसक्ततया संलग्नतया । तस्य राज्ञः आनयने वहने श्रान्ताः । परिश्रान्ताः अत एव गन्तुं चलितुम् अक्षमा असमर्थाः । क्ष्मापतेः राज्ञो राजहंसस्य । रथ्या अश्वाः । पथि मार्गे आकुलाः दूरगमनेनातिशयक्लान्ताः । निकटवटतरोः समीपस्थवटवृक्षस्य । मृतेर्मरणस्य रेखा लेखा चिह्नभूतेति भावः तस्याम् । बन्धनं पाशम् । मृतिसाधनं मरणसाधकम् । विरचय्य विधाय । मत्तु कामोऽभिलाषो यस्याः सा । वाङ्माधुर्या वचनमाधुर्येण विरसीकृतो नीरसीकृतः कलकण्ठस्य कोकिलस्य कण्ठो यया सा । साश्रुकण्ठा सगद्गदस्वरा । व्यलपत् रुरोद । लावण्येन देहसौन्दर्येण उपमितस्तुलितः पुष्पसायकः कामो येन तत्सम्बोधने । भूनायक भूपते । भाविनि भविष्यति । वल्लभः पतिः ।

(३८) नीहारा शीतलाः कराः किरणा यस्य सः नीहारकरश्चन्द्रस्तस्य किरणनिकरस्य मयूखसमूहस्य सम्पर्केण संस्पर्शेन लब्धः प्राप्तोऽवबोधश्चैतन्यं येन सः ।

---

(३७) जब आधी रातमें सब दास-भृत्य आदि सो गये तब एकान्तमें महारानी वसुमती, जो अपार शोक समुद्रको पार करनेमें अपनेको असमर्थ समझती थीं, धीरे-धीरे उस स्थानपर गयीं जहाँ पर राजाके रथको लिये हुए घोड़े थककर शान्तिकी निद्रा ले रहे थे। उसीके समीप बड़के पेड़की मृत्युरेखा सदृश किसी शाखामें उत्तरीय वस्त्र (चादर) को बाँधकर (फाँसीकी रस्सीसी बनाकर) मरनेके लिए तत्पर हो गयीं। जो कोयलकी ध्वनिको भी तिरस्कृत कर चुकी थीं ऐसी मीठी ध्वनिसे रोदन करके कहने लगीं—'हे लावण्यतासे उपमित कामदेवके समान राजन् ! आप पुनः मेरे आगामी जीवनमें भी प्राणपति हों।'

(३८) रानीके विलाप करनेपर तथा शीतल चन्द्रकी किरणोंसे स्पर्शित होकर एवं मन्द

ऽगाधरुधिरविक्षरणनष्टचेष्टो देवीवाक्यमेव निश्चिन्वानस्तन्वानः प्रियवचनानि शनैस्तामाह्वयत् ।

(३९) सा ससंभ्रममागत्यामन्दहृदयानन्दसंफुल्लवदनारविन्दा तमुपोषिताभ्यामिवानिमिषताभ्यां लोचनाभ्यां पिबन्ती विकस्वरेण स्वरेण पुरोहितामात्यजनमुच्चैराहूय तेभ्यस्तमदर्शयत् ।

(४०) राजा निटिलतटचुम्बितनिजचरणाम्बुजैः प्रशंसितदैवमाहात्म्यैरमात्यैरभाणि—'देव, रथ्यचयः सारथ्यपगमे रथं रभसादरण्यमनयत्' इति ।

मागधो मगधाधिपतिः । अगाधस्य प्रभूतस्य रुधिरस्य शोणितस्य विक्षरणेन विशेषतोऽपगमेन नष्टा विलुप्ता चेष्टा दैहिकप्रयत्नो यस्य सः । देवीवाक्यं वसुमतीविलापमेव निश्चिन्वानः देव्येवेयं नान्या विलपतीति निश्चयं कुर्वन् । तन्वानो विस्तारयन् ।

(३९) ससम्भ्रमं सत्वरम् । अमन्देन प्रचुरेण हृदयानन्देन हर्षेण संफुल्लं सम्यग् विकसितं वदनारविन्दं मुखकमलं यस्याः सा । तं राजानम् । उपोषिताभ्यां दर्शनार्थमत्युत्कण्ठिताभ्यामिवेति क्रियोत्प्रेक्षा—अत एव अनिमिषिताभ्यां निर्निमेषाभ्यां लोचनाभ्यां नयनाभ्यां पिबन्ती सादरं विलोकयन्ती । विकस्वरेण अतिस्पष्टेन । तेभ्यः पुरोहितामात्येभ्यः । तं राजानम् ।

(४०) निटिलतटेन भालस्थलेन चुम्बितं स्पृष्टं निजचरणाम्बुजं स्वपादपद्मं यस्तैरमात्यैरित्यस्य विशेषणम् । प्रशंसितं स्तुतं दैवस्यादृष्टस्य माहात्म्यं प्रभावो यैस्तैः । अभाणि—शब्दार्थभणधातोः कर्मणि लुङ् । कथित इत्यर्थः । रथं वहन्तीति रथ्या अश्वास्तेषां चयः समूहः । सारथेः सूतस्यापगमे विनाशे सतीति शेषः । रभसाद् वेगात् । इत्यन्तं अभाणीत्यस्य कर्म ।

पवनके थपेड़ोंसे सञ्चरित होकर वह राजा जो अत्यन्त रक्तके प्रवाहसे निश्चेष्ट हो गया था कुछ-कुछ प्रबुद्ध हो उठा और उसने रोदन-ध्वनिको सुनकर निश्चय कर लिया कि यह ध्वनि मेरी वल्लभा रानीकी है ऐसा समझकर उसने धीमी आवाजसे रानीको सम्बोधित किया ।

(३९) राजाकी ध्वनिसे उत्पन्न हुए हर्षने रानीका मुखकमल प्रफुल्लित हो गया । तत्क्षणही उनको वह व्रतीकी भाँति एकटक देखने लगी । फिर उच्चस्वरसे पुरोहित एवं मन्त्रियोंको बुलाकर उनका दर्शन कराया ।

(४०) मन्त्रियोंने बद्धाञ्जलि करके राजाको प्रणाम किया तथा परमेश्वरको धन्यवाद देते हुए निवेदन किया—'हे महाराज ! सारथीके निधनपर ज्ञात होता है कि घोड़ोंने बड़ी तेजीसे रथको [illegible] इस सघन वनमें ला दिया ।'

(४१) 'तत्र निहतसैनिकग्रामे संग्रामे मालवपतिनाराधितपुरारातिना प्रहितया गदया दयाहीनेन ताडितो मूर्छामागत्यात्र वने निशान्तपवनेन बोधितोऽभवम्' इति महीपतिरकथयत्।

(४२) ततो विरचितमहेन मन्त्रिनिवहेन विरचितदैवानुकूल्येन कालेन शिविरमानीयापनीताशेषशल्यो विकसितनिजाननारविन्दो राजा सहसा विरोपितव्रणोऽकारि।

(४३) विरोधिदैवधिक्कृतपुरुषकारो दैन्यव्याप्ताकारो मगधाधिपतिरधिकाधिरमात्यसंमत्या मृदुभाषितया तथा वसुमत्या मत्या कलितयाचसमबोधि।

(४१) निहतो निःशेषं विनष्टः सैनिकानां योधानां ग्रामः समूहो यस्मिन् तथाभूते। आराधितः सन्तोषितः पुरारातिर्महादेवो येन तथाभूतेन। प्रहितया प्रक्षिप्तया। दयया हीनो दयाहीनस्तेन निर्दयेनेत्यर्थः। आगत्य प्राप्य। निशाया रजन्या अन्तः शेषो निशान्तःप्रभातं तस्य पवनेन तत्सम्बन्धिसमीरणेन बोधितो लब्धसंज्ञोऽभवम् अहमिति शेषः।

(४२) विरचितः कृतो मह उत्सवो येन तथाभूतेन। मन्त्रिनिवहेन अमात्यसंघेन विरचितं सम्पादितं दैवस्यानुकूल्यं साहाय्यं येन तथाभूतेन। कालेनेत्यस्य विशेषणम्, शुभमुहूर्त्ते इति भावः। शिविरं सेनानिवेशम्। अपनीतानि दूरीकृतानि अशेषाणि सर्वाणि शल्यानि बाणाग्राणि यस्य सः। विकसितं प्रसन्नं निजाननारविन्दं स्वमुखकमलं यस्य सः। विरोपिता औषधादिना चिकित्सिता व्रणा यस्य सः।

(४३) विरोधिना प्रतिकूलेन दैवेन भागधेयेन धिक्कृतस्तिरस्कृतः पुरुषकारः विक्रमो यस्य सः। दैन्येन खेदेन व्याप्त आक्रान्तः आकारः स्वरूपं यस्य सः। अधिकाधिकोऽतिशयेनाधिक आधिर्मनोव्यथा यस्य सः। पुंस्याधिर्मानसी व्यथेत्यमरः। अमात्यानां मन्त्रिणां संमत्याऽनुमोदनक्रमेण। मृदु कोमलं भाषित वचनं यस्यास्तया। मत्या बुद्धया। कलितया युक्तया। समबोधि विज्ञापितः। बुध्धातोः कर्मणि लुङ्।

(४१) महाराजने उत्तर देते हुए कहा—'जब संग्राममें सब सैनिक मार डाले गये तब मालवेश मानसारने शिव-प्रसादसे प्राप्त गदा मुझे मारी जिससे मैं मूर्च्छित हो गया और इस वनके प्रातःकालिक शीतल पवनस्पर्शसे प्रतिबोधित हुआ।'

(४२) तत्पश्चात् अमात्योंने अनेक प्रकारके उत्सव मनाये और राजाकी प्राणरक्षाके निमित्त देवाराधन किया। तथा राजाको शिविरमें लाकर अस्त्रोंके व्रणोंकी औषध की। समुचित उपचारसे राजा शीघ्र ही प्रसन्नमुख—प्रफुल्लवदन—हो गया—शीघ्र अच्छा हो गया।

(४३) दैवके प्रतिकूल होनेसे दीनतासे परिव्याप्त एवं खिन्न प्रकृतिवाले तथा विफल पौरुषवाले उन मगधराजको मेधा मन्त्रिगणोंकी सम्मतिसे तथा निज बुद्धिसे रानी वसुमती करने लगीं, सान्त्वना देने लगीं।

(४४) 'देव, सकलस्य भूपालकुलस्य मध्ये तेजोवरिष्ठो गरिष्ठो भवानद्य विन्ध्यवनमध्यं निवसतीति जलबुद्बुदसमाना विराजमाना संपत्तडिल्लतेव सहसैवोदेति नश्यति च । तन्निखिलं दैवायत्तमेवावधार्यं कार्यम् ।

(४५) किञ्च पुरा हरिश्चन्द्ररामचन्द्रमुख्या असंख्या महीन्द्रा ऐश्वर्योपमितमहेन्द्रा दैवतन्त्रं दुःखयन्त्रं सम्यगनुभूय पश्चादनेककालं निजराज्यमकुर्वन् । तद्वदेव भवान्भविष्यति । कंचन कालं विरचितदैवसमाधिर्गलिताधिस्तिष्ठतु तावत्' इति ।

(४६) ततः सकलसैन्यसमन्वितो राजहंसस्तपोविभ्राजमानं वामदेवनामानं तपोधनं निजाभिलाषावाप्तिसाधनं जगाम ।

---

(४४) तेजसा प्रतापेन वरिष्ठो महत्तरः । गरिष्ठोऽतिशयेन गुरुः । विन्ध्यवनमध्यं निवसति राज्यभ्रष्टोऽरण्यमाश्रित्य तिष्ठति । जलस्य सलिलस्य बुद्बुदेन विकारेण समाना तुल्या । सम्पत् राज्यलक्ष्मीः । तडिल्लता विद्युदेव । सहसा अकस्मात् । उदेति आविर्भवति । नश्यति अदृश्यतां याति च । तत् तस्मात्कारणात् । दैवायत्तं भाग्याधीनम् । अवधार्यं निश्चेतव्यम् ।

(४५) किं च अपरञ्च । हरिश्चन्द्ररामचन्द्रौ मुख्यौ प्रधाने येषां ते । ऐश्वर्येण सम्पदा उपमितस्तुलितः समीकृत इति यावत् । महेन्द्रो देवराजो यैस्ते । दैवतन्त्रं दैवायत्तम् दैवचालितमिति भावः । दुःखयन्त्रं दुःखचक्रम् । तद्वदेव—यथा हरिश्चन्द्रादयो राजानः पूर्वं महद्दुःखमनुभूय पश्चात्पुनरपि स्वस्वराज्यादिकं प्राप्तवन्तस्तथा । भविष्यति राज्यं प्राप्स्यतीत्यर्थः । विरचितः कृतो दैवसमाधिर्दैवाराधनं येन सः । गलितोऽपगत आधिर्मनोव्यथा यस्य सः । तिष्ठतु अपेक्षतामित्यर्थः ।

(४६) तपसा विशेषेण भ्राजमानं दीप्यमानम् । वामदेव इति नाम तस्य तम् । तप एव धनं यस्य सः तम् । तापसमित्यर्थः । निजस्य स्वस्याभिलाषस्य मनोरथस्य अवाप्तेः साधनं सम्पादकम् ।

---

(४४) हे देव ! वर्त्तमान कालमें जितने राजे-महाराजे हैं उनमें आप सबश्रेष्ठ हैं । किन्तु, इतने तेजवान् एवं प्रतापी होकर भी दैवगतिसे विन्ध्यारण्यमें पड़े हैं । इससे सिद्ध है कि राज्यलक्ष्मी जलके बुद्बुदोंके समान बिजलीकी तरह सहसा आ जाती है—अतः सोच वृथा है, सभी बातें दैवायत्त हैं ।

(४५) हे राजन् ! प्राचीन कालमें महाराज हरिश्चन्द्र, राजा रामचन्द्र आदि अगणित महीपतियोंने पहले दुःख भोगकर पुनः महेन्द्रके समान सुख भोगा । तद्वत् आप भी दुःख भोगकर सुखी होंगे—धीरज धरें, घबड़ायें नहीं । शान्तिसे दैवाराधन करते रहें ।

(४६) ततः अभीष्टसिद्धिके लिए राजा राजहंस मनोरथपूर्णकर्त्ता, तपी एवं तेजोबलवाले प्रख्यात वामदेव मुनिके समीप गया ।

(४७) तं प्रणम्य तेन कृतातिथ्यस्तस्मै कथितकथ्यस्तदाश्रमे दूरीकृतश्रमे कंचन कालमुषित्वा निजराज्याभिलाषी मितभाषी सोमकुलावतंसो राजहंसो मुनिमभाषत्—'भगवान् , मानसारः प्रबलेन दैवबलेन मां निर्जित्य मद्भोग्यं राज्यमनुभवति । तद्वदहमप्युग्रं तपो विरच्य तमरातिमुन्मूलयिष्यामि लोकशरण्येन भवत्कारुण्येनेति नियमवन्तं भवन्तं प्राप्नवम्'इति ।

(४८) ततस्त्रिकालज्ञस्तपोधनो राजानमवोचत्—'सखे ! शरीरकार्श्यकारिणा तपसालम् । वसुमतीगर्भस्थः सकलरिपुकुलमर्दनो राजनन्दनो नूनं संभविष्यति, कञ्चन कालं तूष्णीमास्स्व इति ।

---

(४७) तेन वामदेवेन । कृतं विहितमातिथ्यं अतिथिसत्कारादि यस्य सः तस्मै वामदेवाय । कथितमुक्तं कथ्यं वक्तव्यं येन सः । दूरीकृतोऽपाकृतः श्रम आयासो येन यत्र वा तस्मिन् । सोमकुलावतंसः चन्द्रवंशभूषणम् । मानसारस्तदाख्यो मालवराजः । तद्वदिति—तेन मानसारेण यथा तपसा शिवं सन्तोष्य तस्माद्वरः समासादितस्तथाऽहमपि । उग्रं तीव्रमुत्कटम् । विरच्य कृत्वा । लोकानां जनानां शरणे रक्षणे साधुना । भवतस्तव कारुण्येन करुणया । इति—इति हेतोः । नियमवन्तं संयमिनम् ।

(४८) त्रिकालज्ञः भूतभविष्यद्वर्तमानकालवित् । शरीरस्य देहस्य कार्श्यं क्षीणतां करोतीति तेन । अलं प्रयोजनं नास्ति । वसुमतीगर्भस्थः—महिषीगर्भे स्थितः । सकलं निखिलं रिपुकुलं शत्रुमण्डलं मर्दयति हिनस्तीति तथाभूतः । नूनं निश्चितं सम्भविष्यति—उत्पत्स्यते । तूष्णीमास्स्व जोषं तिष्ठ, युद्धादिकं मा कार्षीरित्यर्थः ।

---

(४७) वामदेवाश्रममें जाकर चन्द्रकुलालंकार राजा राजहंसने मुनिको प्रणाम करके आतिथ्य—सत्कारको स्वीकार किया । उनके सत्संगसे परिश्रमादि व्यथाको कुछ काल वहाँ रहकर निवृत्त किया । ततः स्वराज्याभिलाषी मितभाषी उस राजाने एक दिन उन मुनिसे कहा—'हे महाराज ! मालवेश मानसारने दैवकी प्रबल शक्तिसे मेरे राज्यको ले लिया—अर्थात् मुझे पराजितकर वह स्वयं मेरे राज्यको भोग रहा है । मैं चाहता हूँ कि मैं भी प्रबल तप करके दैवबलसे उस मानसारका उन्मूलन कर दूँ । अतः हे दीनवत्सल ! आप मुझे कृपया, तप विधि बता दें—जिससे मैं कृतकृत्य होऊँ । इसीकी विधि जाननेके हेतु आप तक आया हूँ ।'

(४८) यह श्रवणकर त्रिकालज्ञ तपोधन वामदेवने राजासे कहा—'शरीरको क्लेशकारिणी तपस्या न करो । रानी वसुमतीके गर्भसे जो पुत्र होगा वह सम्पूर्ण शत्रुओंको नष्ट करनेवाला है । इससे कुछ दिनों शान्ति रखो ।'

(४९) गगनचारिण्यापि वाण्या 'सत्यमेतत्' इति तदेवावाचि। राजापि मुनिवाक्यमङ्गीकृत्यातिष्ठत् ।

(५०) ततः सम्पूर्णगर्भदिवसा वसुमती सुमुहूर्ते सकललक्षणलक्षितं सुतमसूत । ब्रह्मवर्चसेन तुलितवेधसं पुरोधसं पुरस्कृत्य कृत्यविन्महीपतिः कुमारं सुकुमारं जातसंस्कारेण बालालंकारेण च विराजमानं राजवाहनः नामानं व्यधत्त ।

(५१) तस्मिन्नेव काले सुमतिसुमित्रसुमन्त्रसुश्रुतानां मन्त्रिणां प्रमतिमित्रगुप्तमन्त्रगुप्तविश्रुताख्या महाभिख्याः सूनवो नवोद्यदिन्दुरुचश्चिरायुषः समजायन्त । राजवाहनो मन्त्रिपुत्रैरात्ममित्रैः सह बालकेलीरनुभवन्नवर्धत ।

---

(४९) गगनचारिण्या–अशरीरिण्या । अङ्गीकृत्य स्वीकृत्य ।

(५०) सम्पूर्णा परिपूर्णाः गर्भदिवसाः नवदिनाधिकनवमासाः यस्याः सा । सुमुहूर्ते शुभलग्ने । सकलैरशेषैर्लक्षणैः शोभाग्यचिह्नैर्लक्षितं युक्तम् । ब्रह्मणो वर्च इति 'ब्रह्महस्तिभ्यां वर्चसः' इत्यच् । तेन ब्रह्मतेजसा तुलित उपमितो वेधा ब्रह्मा येन रम् । ब्रह्मतेजसा ब्रह्मसदृशम् । पुरस्कृत्य अग्रे कृत्वा । पुरोधसं पुरोहितम् । कृत्यवित् समयोचितकार्यज्ञः । सुकुमारं सुन्दरदर्शनम् । जातसंस्कारेण जातकर्मनाम्ना संस्कारविशेषेण । बालालङ्कारेण बालकोचितभूषणेन । विराजमानं विशेषतः शोभमानम् । राजवाहन इति नाम यस्य तम् । व्यधत्त चकार ।

(५१) तस्मिन्नेव काले–यदा राजवाहनस्य जन्माभवत् तदेव । महती समधिका अभिख्या शोभा येषां ते । अभिख्या नामशोभयोरित्यमरः । महदभिख्या इति पाठान्तरन्तु चिन्त्यम् । नवो नूतनः प्रातिपदिक इति यावत्–उद्यन् उदयमानो य इन्दुश्चन्द्रमास्तस्य रुगिव रुक् कान्तिर्येषां ते । चिरायुषो दीर्घजीविनः । आत्मनः स्वस्य मित्रैः सुहृद्भिः । बालकेलीः शैशवोचितक्रीडाः ।

---

(४९) इसी क्षण आकाश-वाणीने भी 'यह बात सत्य है' ऐसा कहकर मुनिकी बातका समर्थन किया । राजा भी मुनिवाक्यपर सन्तुष्ट होकर वहीं रहने लगा ।

(५०) उसके पश्चात् गर्भके दिन पूरे होनेपर रानी वसुमतीने शुभ मुहूर्तमें सभी शुचि-शुभ लक्षणोंसे विभूषित पुत्रको उत्पन्न किया । तब ब्रह्मदेवके समान परम तेजस्वी पुरोहित की आज्ञानुसार उस कृत्यवेत्ता महीपालने उस सुकुमार राजकुमारका जन्मसंस्कार आदि (बालकोंके योग्य पहननेवाले अलंकारोंसे अलंकृत) यथाविधि कराकर राजवाहन नाम रखा ।

(५१) इसी समय सुमति, सुमन्त्र, सुमित्र और सुश्रुत चारों अमात्योंको भी क्रमसे प्रमति मित्रगुप्त, मन्त्रगुप्त और विश्रुत नामक बड़े सुन्दर चार पुत्र नूतनोदित चन्द्रकी तरह दीर्घजीवी उत्पन्न हुए । कुमार राजवाहन मन्त्रि-पुत्रोंसे बालक्रीडा करते हुए वृद्धि प्राप्त करते हुए रहने लगा ।

(५२) अथ कदाचिदेकेन तापसेन रसेन राजलक्षणविराजितं कञ्चिन्नयनानन्दकरं सुकुमारं कुमारं राज्ञे समर्प्यावाचि—भूवल्लभ, कुशसमिदानयनाय वनं गतेन मया काचिदशरण्या व्यक्तकार्पण्याश्रु मुञ्चन्ती वनिता विलोकिता ।

(५३) निर्जने वने किंनिमित्तं रुद्यते त्वया इति पृष्टा सा करसरोरुहैरश्रु प्रमृज्य सगद्गदं मामवोचत्—मुने, लावण्यजितपुष्पसायके मिथिलानायके कीर्तिव्याप्तसुधर्मणि निजसुहृदो मगधराजस्य सीमन्तिनीसीमन्तमहोत्सवाय पुत्रदारसमन्विते पुष्पपुरमुपेत्य कञ्चन कालमधिवसति समाराधितगिरीशो मालवाधीशो मगधराजं योद्धुमभ्यगात् ।

(५२) तापसेन मुनिना । रसेन अनुरागेण, राजहंसं प्रति प्रीत्येत्यर्थः । राज्ञो नृपस्य लक्षणैश्चिह्नैर्विराजितं शोभितम् । करतलादौ राजचिह्नचक्रच्छत्रादियुक्तमित्यर्थः । नयनानन्दकरं लोचनानन्ददायिनम् । राज्ञे राजहंसाय । अशरण्या नास्ति शरण्यं रक्षिता यस्याः सा । रक्षकहीनेत्यर्थः । व्यक्तं प्रकटितं कार्पण्यं दैन्यं यया सा । अश्रु नेत्रजलम् । मुञ्चन्ती त्यजन्ती, रोरूयमानेति शेषः ।

(५३) करसरोरुहैः करकमलैः । अत्र सौन्दर्यातिशयमहिम्ना गौरवाद्बहुवचनं बोद्धव्यम् । प्रमृज्य दूरीकृत्य । सगद्गदं गद्गदस्वरेणेत्यर्थः । लावण्येन कान्त्या जितः पराजितः पुष्पसायकः कामो येन तस्मिन् । मिथिलानायके मिथिलाधिपतौ । कीर्त्या यशसा व्याप्ता परिपूरिता सुधर्मा देवसभा येन तस्मिन् । स्यात्सुधर्मा देवसभेत्यमरः । सीमन्तिन्यः महिष्याः सीमन्तमहोत्सवाय सीमन्तोन्नयनाख्यगर्भसंस्काररूपमुत्सवं द्रष्टुम् । पुत्राश्च दाराश्चेति पुत्रदारास्तै समन्विते युक्ते । अधिवसति वासं कुर्वति सति । समाराधितः सेवितो गिरीशो महेश्वरो येन सः ।

(५२) एक समय कोई एक तपस्वी, राजाओंके सुलक्षणोंसे लक्षित तथा नयनाभिराम एक सुन्दर एवं सुकुमार बालकको, बड़े प्रेमके साथ राजाको समर्पित करके कहने लगा—"हे पृथ्वीके पति ! महाराज !! कुश और समिधाकी प्राप्तिके निमित्त मैं अरण्यमें गया था । वहाँ पर एक अनाथ तथा असहाय एवं दीना, आँखोंसे अश्रु बहाती हुई रमणीको मैंने देखा और पूछा कि इस एकान्त निर्जन वनमें तुम क्यों रो रही हो ? उसने अपने करकमलसे आँसुओंको पोंछकर गद्गद स्वरमें मुझसे कहा—

(५३) हे मुने ! अपने शरीरांगोंकी लावण्यतासे कामको जीतनेवाला मिथिलेश प्रहारवर्मा जिसकी कीर्तिलता देवोंकी सभामें भी फैली है, अपने मित्र मगधराजकी सीमन्तिनीके सीमन्तोत्सवमें सम्मिलित होने के लिए स्त्री-पुत्रोंके साथ आया और पुष्पपुरीमें आकर ठहरा । इसी समय शिवाराधनसे दैवशक्ति प्राप्त कर मालवेश युद्धके लिये वहाँपर आया ।

(५४) तत्र प्रख्यातयोरेतयोरसंख्ये संख्ये वर्तमाने सुहृत्साहाय्यकं कुर्वाणो निजबले सति विदेहे विदेहेश्वरः प्रहारवर्मा जयवता रिपुणाभिगृह्य कारुण्येन पुण्येन विसृष्टो हतावशेषेण शून्येन सैन्येन सह स्वपुरगमनमकरोत् ।

(५५) ततो वनमार्गेण दुर्गेण गच्छन्नाधिकबलेन शबरबलेनरभसादभिहन्यमानो मूलबलाभिरक्षितावरोधः स महानिरोधः पलायिष्ट । तदीयार्भकयोर्यमयोर्धात्रीभावेन परिकल्पिताहं मद्दुहितापि तीव्रगतिं भूपतिमनुगन्तुमक्षमे अभूव ? तत्र विवृतवदनः कोऽपि रूपी कोप इव व्याघ्रः

(५४) प्रख्यातयोः वीरत्वेन प्रसिद्धयोः । संख्ये युद्धे । सुहृदः । स्वमित्रस्य राजहंसस्येति शेषः । सहाय्यकं साहाय्यमेवेति स्वार्थे कः । निजबले स्वसैन्ये । विगतो विनष्टो देहः शरीरं यस्य तस्मिन् । निहते सतीति शेषः । विदेहेश्वरो मिथिलाधिपः । जयवता विजयिता । अभिगृह्याक्रम्य । कारुण्येन करुणया । पुण्येन स्वभागधेयमाहात्म्येन । विसृष्टस्तेन मालवाधीशेन परित्यक्तः । शून्येन हताशेन शस्त्रादिरहितेन वा ।

(५५) दुर्गेण दुर्गमेण । अधिकं प्रसूतं बलं सामर्थ्यं यस्य तेन । शबरबलेन शबरसैन्येन । रभसाद् वेगाद् । मूलबलेन प्रधानसैन्येन अभिरक्षितः सुरक्षितोऽवरोधः शुद्धान्तः स्त्रीवर्गं इति शेषः येन सः । स प्रहारवर्मा । महान् समधिको निरोधः स्वावरोधः स्वसैन्यः स्वपरिवेष्टनं यस्य सः । तदीयार्भकयोः तत्पुत्रयोः । यमयोर्युग्मजातयोः । धात्रीभावेन उपमातृरूपेण । तीव्राऽतिवेगवती गतिर्यस्य तम् । अनुगन्तुमनुसर्तुम् । अक्षमे असमर्थे । तत्रारण्ये । विवृतं विस्तारितं वदनं मुखं येन सः । रूपी

(५४) उस समय उन दोनों वीरोंका खूब युद्ध होने लगा । मित्रकी सहायता करते हुए मिथिलेश प्रहारवर्मांकी सेना भी नष्ट हो गयी और वह मालवेश मानसार द्वारा पकड़ लिया गया । तत्पश्चात् मानसारने दयादृष्टिसे अथवा मिथिलेशके पुण्यके बलसे उसे (मिथिलेशको) बन्धनमुक्त कर दिया । मिथिलेश भी छूटकर अपनी बची-खुची दुःखी सेनाके साथ अपने नगरकी ओर चल दिया ।

(५५) जब मिथिलेश पराजित होकर उद्विग्न मन होकर अति विपुल एवं सघन वनके रास्ते होकर अपने देशको जा रहा था तब मार्गमें उसे प्रबल भीलसेनाका सामना करना पड़ा । परन्तु प्रधान सैन्यबलकी रक्षामें अन्तःपुरकी स्त्रियोंके साथ रक्षित होकर सब लोग प्राणत्राणके लिए वहाँसे भाग गये । प्रहारवर्मांके जुड़वाँ लड़कोंकी धात्री मैं तथा मेरी कन्या दोनों तीव्र गतिसे राजाके साथ दौड़नेमें असमर्थ होकर पीछे रह गयीं । उसी समय मस-

शीघ्रं मामाघ्रातुमागतवान् । भीताहमुदग्रग्राव्णि स्खलन्ती पर्यपतम् । मदीयपाणिभ्रष्टो बालकः कस्यापि कपिलाशवस्य क्रोडमभ्यलीयत ।

(५६) तच्छवाकर्षिणोऽमर्षिणो व्याघ्रस्य प्राणान्बाणो बाणासनय, न्त्रमुक्तोऽप्याहरत् । लोलालको बालकोऽपि शबरैरादाय कुत्रचिदुपानीयत् । कुमारमपरमुद्वहन्ती मद्दुहिता कुत्र गता न जाने । साहं मोहं गता केनापि कृपालुना वृष्णिपालेन स्वकुटीरमावेश्य विरोपितव्रणाभवम् । ततः स्वस्थीभूय भूयः क्ष्माभर्तुरन्तिकमुपतिष्ठासुरसहायतया दुहितुरनभिज्ञाततया च व्याकुलीभवामि' इत्यभिदधाना 'एकाकिन्यपि स्वामिनं गमिष्यामि' इति सा तदैव निरगात् ।

मूर्तिमान् । आघ्रातुं हन्तुम् । उदग्रग्राव्णि उन्नतप्रस्तरे । मदीयपाणिभ्रष्टो मम हस्तच्युतः । कपिलाया धेनोः शवस्य मृतदेहस्य । क्रोडमङ्कम् । अभ्यलीयत प्रच्छन्नोऽभवत् ।

(५६) अमर्षिणः क्रुद्धस्य । बाणः शरः । बाणासनयन्त्रं धनुस्तस्मान्मुक्तः प्रक्षिप्तः । विलोलाश्चञ्चला अलकाश्चूर्णकुन्तला यस्य सः । आदाय गृहीत्वा । कुत्रचिदज्ञातस्थाने । अपरमन्यं यमजयोर्मध्ये एकं तद्दुहितुरङ्कस्थमित्यर्थः । उद्वहन्ती धारयन्ती । कृपालुना दयावता । वृष्णिपालेन मेषपालेन[1] । आवेश्य प्रवेश्य । विरोपित औषधादिना चिकित्सितो व्रणो यस्याः सा । स्वस्थीभूय सुस्था भूत्वा अहमिति शेषः । भूयः पुनरपि । क्ष्माभर्तुः भूपतेः प्रहारवर्मणः । अन्तिकं समीपम् । उपतिष्ठासुः प्रयातुमिच्छुः । असहायतया सहायाभावात् । अनभिज्ञतया निरुद्दिष्टतया । अभिदधाना कथयन्ती ।

णार्थ मुखविवरको फैलाये हुए साक्षात् क्रोधकी मूर्तिके सदृश कोई व्याघ्र हमारी ओर हम दोनोंको खानेको दौड़ा । उससे भयभीत होकर मैं ऊबड़-खाबड़ जमीन पर गिर पड़ी तथा मेरे हाथसे छूटकर बालक एक मृत कपिला गौकी गोदमें गिर पड़ा और वहीं छिप गया ।

(५६) वह व्याघ्र ज्यों ही उस कपिला गौको खींचनेके लिए झपटा त्यों ही किसी व्याधाके हाथसे छोड़े गये बाणसे वह व्याघ्र मार डाला गया और उस चञ्चल केश-कलापवाले बालकको कोई एक शबर लेकर वहाँसे न मालूम कहाँ भाग गया । दूसरे बालकको लेकर मेरी पुत्री भी कहाँ चली गयी यह भी मुझसे अज्ञात है । मैं गिरनेसे मूर्छित हो गयी थी अतः एक दयालु ग्वालेने मुझे अपने घर ले जाकर मेरे घावोंकी मरहम पट्टी की तथा मुझे चङ्गा किया । अब मैं स्वस्थ होकर अपने महाराजके समीप जाना चाहती हूँ । किन्तु मैं एकाकिनी हूँ एवं पुत्रीके लोप होनेपर और दुःखी हूँ तथा रो रही हूँ । अस्तु जैसा भी हो मैं महाराजके पास अवश्य जाऊंगी । ऐसा कहती हुई वह वहाँसे चली गयी ।

---

१. गोपालेन ।

(५७) अहमपि भवन्मित्रस्य विदेहनाथस्य विपन्निमित्तं विषादमनुभवंस्तदन्वयाङ्कुरं कुमारमन्विष्यंस्तदेकं चण्डिकामन्दिरं सुन्दरं प्रागाम् ।

(५८) तत्र संततमेवंविधविजयसिद्धये कुमारं देवतोपहारं करिष्यन्तः किराताः 'महीरुहशाखावलम्बितमेनमसिलतया वा, सैकततले खनननिक्षिप्तचरणं लक्षीकृत्य शितशरनिकरेण वा, अनेकचरणैः पलायमानं कुक्कुरबालकैर्वा दंशयित्वा संहनिष्यामः' इति भाषमाणा मया समभ्यभाष्यन्त 'ननु किरातोत्तमाः, घोरप्रचारे कान्तरे स्खलितपथः स्थविरभूसुरोऽहं मम पुत्रकं कचिच्छायायां निक्षिप्य मार्गान्वेषणाय किञ्चिदन्तरमगच्छम् ।

(५७) अहमपि वक्ता तापसोऽपि । विपद् निमित्तं यस्य तम्, विपत्तिसंजनितम् । तस्य विदेहराजस्यान्वयस्य वंशस्याङ्कुर प्ररोहम् । तदा तस्मिन् समये ।

(५८) तत्र चण्डिकामन्दिरे । एवंविधविजयसिद्धये—यथा साम्प्रतं विदेहराजं वयं विजितवन्तः एवमेव सर्वदास्माकं विजयो भूयादिति चण्डिकाप्रसादलाभाय । देवतोपहारं बलिम् । महीरुहस्य वृक्षस्य शाखायामवलम्बितं बद्धम् । असिलतया खड्गेन । सैकततले वालुकामयप्रदेशे । खनने गर्ते निक्षिप्तौ कीलितौ चरणौ यस्य तम् । लक्षीकृत्य उद्दिश्य । शितशरनिकरेण तीक्ष्णबाणसमूहेन । अनेकचरणैः क्षिप्रचरणैः वेगेन धावद्भिरित्यर्थः । कुक्कुरबालकैरित्यस्य विशेषणम् । इति भाषमाणाः एवं कथयन्तः । समभ्यभाष्यन्त उक्ताः । घोरो भयङ्करः प्रचारः संचारो यत्र तस्मिन् । कान्तारे दुर्गममार्गे । स्खलितो भ्रष्टः पन्था यस्य सः । मार्गभ्रष्ट इत्यर्थः । भूसुरो ब्राह्मणः निक्षिप्य संस्थाप्य । अन्तरं दूरम् ।

(५७) तत्पश्चात् मैं भी अपने मित्र विदेहेशकी विपत्तिपर विषादयुक्त होकर उनके वंशबीजांकुरकी खोजमें आगे चल पड़ा और जाते-जाते एक चण्डीमन्दिरमें पहुँचा ।

(५८) उस मन्दिरमें आकर देखा कि वहाँ बहुतसे किरात-भील एकत्र खड़े हैं और उस बालकको विजयोपलक्षके निमित्त देवीको बलि चढ़ाना चाहते हैं । वे कहते थे कि, 'इसे या तो वृक्षमें लटकाकर तलवारसे मार दो अथवा बालू में उसके दोनों पैर गाड़ दो और इसको तेज तीरोंसे वेध दो । या कुत्तोंके पिल्ले इसके पीछे छोड़ दो जिसमें ये सब इसका मांस नोंच खावें आदि-आदि ।' उनको ऐसा कहते हुए सुनकर मैंने कहा—हे किरातवरों ! मैं वृद्ध ब्राह्मण हूँ तथा इस गहन बनमें मार्गभ्रष्ट हो रहा हूँ । मेरा एक पुत्र था जिसे मैंने एक पेड़की छायामें सुला दिया था और स्वयं मार्ग खोजने कुछ दूर गया था ।

(५९) स कुत्र गतः, केन वा गृहीतः, परीक्ष्यापि न वीक्ष्यते तन्मु खावलोकनेन विनानेकान्यहान्यतीतानि । किं करोमि, क्व यामि, भवद्भि किमदर्शि' इति ।

(६०) 'द्विजोत्तम, कश्चिदत्र तिष्ठति । किमेष तव नन्दनः सत्यमेव तदेनं गृहाण' इत्युक्त्वा दैवानुकूल्येन मह्यं तं व्यतरन् ।

(६१) तेभ्यो दत्ताशीरहं वालकमङ्गीकृत्य शिशिरोदकादिनोपचारे णाश्वास्य निःशङ्कं भवदङ्कं समानीतवानस्मि । एनमायुष्मन्तं पितृरूपो भवानभिरक्षतात्' इति ।

(६२) राजा सुहृदापन्निमित्तं शोकं तन्नन्दनविलोकनसुखेन किञ्चि दधरीकृत्य तमुपहारवर्मनाम्नाहूय राजवाहनमिव पुपोष ।

---

(५९) स मत्पुत्रकः । परीक्ष्य अन्विष्य । अहानि दिनानि । अतीतानि गतानि । अदर्शि दृष्टः ।

(६०) कश्चित् एको बालकः । नन्दनः सुतः । दैवानुकूल्येन दैवानुग्रहेण । व्यतरन् दत्तवन्तः ।

(६१) तेभ्यः किरातेभ्यः । दत्ता अर्पिता आशिषो येन सः । अङ्गीकृत्य गृहीत्वा । शिशिरोदकादिना शीतलजलादिरूपेण शुश्रूषणेन । आश्वास्य स्वस्थं कृत्वा भवदङ्कं भवत्समीपम् । पितृरूपः पितृतुल्यः । अभिरक्षतात् रक्षतु । तुह्योस्तातङ्ङाशि ष्यन्यतरस्याम् इति तातङ् ।

(६२) राजा राजहंसः । सुहृदो मित्रस्य प्रहारवर्मणः आपद् विपद् निमित्तं कारणं यस्य तम् । तस्य मित्रस्य नन्दनस्य सुतस्य विलोकनाद् दर्शनाद् यत्सुखं तेन । अधरी कृत्य स्वल्पीकृत्य । उपहारवर्मनाम्ना । आहूय आकार्य । राजवाहनमिव स्वतनयवत् ।

---

(५९) किन्तु, लौटने पर मैंने उसे वहाँ न पाया । नहीं ज्ञात हुआ कि वह कहाँ गया, उसे कौन जानवर ले गया । अन्वेषण करनेपर भी उसे नहीं पाया, उसका मुख देखे बिना कई दिन व्यतीत हो गये । क्या करूँ ? आपलोगों ने उसे देखा है ?

(६०) हे विप्र ! एक बालक यहाँ है । क्या सत्य ही आपका पुत्र है ? लीजिए इसे आप ले जाइये । ऐसा कहते हुए उन्होंने इस बालकको मुझे दैवानुकूल होनेसे दे दिया ।

(६१) मैंने उन लोगोंको आशीर्वाद दिया तथा शीतल जलोपचारसे इस बालकको निश्शंक कराकर आपके अंकमें ला रहा हूँ । इस आयुष्मान् बालकके आप पितातुल्य हैं अतः इसकी आप रक्षा करें ।

(६२) यह श्रवणकर राजाने सुहृदके विपत्तिजनित दुःखोंको उस बालकके मुखदर्शन से थोडा-थोडा दूर किया और उसका नाम उपहारवर्मा रखकर राजवाहनकी तरह उसका भी लालन-पालन करना प्रारम्भ किया ।

(६३) जनपतिरेकस्मिन्पुण्यदिवसे तीर्थस्नानाय पक्कणनिकटमार्गेण गच्छन्नवलया कयाचिदुपलालितमनुपमशरीरं कुमारं कंचिदवलोक्य कुतूहलाकुलस्तामपृच्छत्—'भामिनि ! रुचिरमूर्तिः सराजगुणसंपूर्तिरसावर्भको भवदन्वयसंभवो न भवति कस्य नयनानन्दनः, निमित्तेन केन भवदधीनो जातः, कथ्यतां याथातथ्येन त्वया' इति ।

(६४) प्रणतया तया शबर्या सलीलमलापि—'राजन् ! आत्मपल्लीसमीपे पदव्यां वर्तमानस्य शक्रसमानस्य मिथिलेश्वरस्य सर्वस्वमपहरति शबरसैन्ये मद्दयितेनापहृत्य कुमार एष मह्यमर्पितो व्यवर्धत' इति ।

(६५) तदवधार्य कार्यज्ञो राजा मुनिकथितं द्वितीयं राजकुमारमेव

---

(६३) जनपतिः राजा । पुण्यदिवसे पुण्यतिथौ पर्वणि वा । तीर्थस्नानाय तीर्थे स्नानं कर्तुम् । पक्वणस्य शबरालयस्य निकटमार्गेण सन्निहिताध्वना । अबलया स्त्रिया । उपलालितं वात्सल्येन धृतम् । अनुपमं अतुलनीयं शरीरं देहो यस्य तम् । कुतूहलेन कौतुकेन आकुलो व्याप्तः । भामिनि हे कामिनि ! सम्बोधनमेतत् । रुचिरा मनोरमा मूर्त्तिः स्वरूपं यस्य सः । राजगुणानां नृपलक्षणानां संपूर्त्या परिपूर्णतया सह वर्त्ततेऽसाविति । अर्भको बालः । भवत्यास्तवान्वये वंशे सम्भव उत्पत्तिर्यस्य सः । नयनानन्दनो नेत्रप्रीतिदः पुत्र इति भावः । निमित्तेन कारणेन । भवदधीनः त्वदायत्तः । याथातथ्येन तत्त्वतः ।

(६४) प्रणतया कृतनमस्कारया । सलीलं सस्मितम् अलापि अभाषि । पदव्यां मार्गे । शक्रसमानस्य इन्द्रतुल्यस्य । सर्वस्वं सर्वधनम् । मद्दयितेन मम भर्त्रा । व्यवर्धत वृद्धिं गतः ।

(६५) अवधार्य निशम्य । कार्यज्ञः कृत्यवित् । सामदानाभ्यां साम्ना सान्त्व-

---

(६३) एकदा किसी पुण्य कालके दिन मगधेश तीर्थस्नानके लिए जा रहे थे । रास्तेमें शबरोंके गाँवमें एक वनिताको एक सुन्दर बालकको लालन करते हुए एवं किसी दूसरेको दिखलाते हुए देखा । राजाने उस वनितासे आश्चर्यचकित होकर कुतूहलसे पूछा—'हेभामिनि इतना सुन्दर और सम्पूर्ण राजलक्षणोंसे युक्त यह सुन्दर मूर्तिवाला बालक किसका है । तुम्हारे वंशमें यों ऐसे सुन्दर बालककी उत्पत्ति असम्भव है । अतः सत्य कहो यह किसके नेत्रोंकी पुतली है । कैसे तुम्हारे पास यहाँ आया ?

(६४) वह भीलिनी प्रणामकर कहने लगी—'हे देव ! जब शबरोंकी सेनाने इस ग्रामसे जाते हुए मिथिलेशका सर्वस्व अपहरण कर लिया था । तब मेरे पतिने हरण करके इस बालकको मुझे दिया था । तबसे मैं इसका पालन कर रही हूँ ।'

(६५) उस भीलिनी द्वारा इस बालकका वृत्त जानकर तथा भलीभाँति जानकर

निश्चित्य सामदानाभ्यां तामनुनीयापहारवर्मेत्याख्याय देव्यै 'वर्धय' इ
समर्पितवान् ।

(६६) कदाचिद्वामदेवशिष्यः सोमदेवशर्मा नाम कंचिदेकं बाल
राज्ञः पुरो निक्षिप्याभाषत—'देव ! रामतीर्थे स्नात्वा प्रत्यागच्छता मय
काननावनौ वनितया कयापि धार्यमाणमेनमुज्ज्वलाकारं कुमारं विलोक्य
सादरमभाणि—'स्थविरे ! का त्वम् ? एतस्मिन्नटवीमध्ये बालकमुद्वहन्ती
किमर्थमायासेन भ्रमसि' इति ।

(६७) वृद्धयाप्यभाषि—'मुनिवर ! कालयवननाम्नि द्वीपे कालगु
नाम धनाढ्यो वैश्यवरः कश्चिदस्ति । तन्नन्दिनीं नयनानन्दकारिणीं सुवृत्ता
नामैतस्माद्द्वीपादागतो मगधनाथमन्त्रिसंभवो रत्नोद्भवो नाम रमणीय

वादेन दानेन चोपायभूतेन । तां शबरीम् । अनुनीय सन्तोष्य । अपहारवर्मेत्याख्या
अपहारवर्मेति नाम कृत्वा । वर्धय पालय ।

(६६) राज्ञो राजहंसस्य । निक्षिप्य संस्थाप्य । काननावनौ अरण्यप्रदेशे
स्थविरे वृद्धे सम्बोधनमेतत् । 'प्रवयाः स्थविरो वृद्धो जीनो जीर्णो' इत्यमरः । अटवी
मध्येऽरण्यमध्ये । उद्वहन्ती धारयन्ती । आयासेन क्लेशेन ।

(६७) कालयवननाम्नि कालयवनाख्ये । धनाढ्यो धनसमृद्धः । तन्नन्दि
तद्दुहितरम् । मगधनाथस्य मगधाधिपस्य मन्त्रिणोऽमात्यात् सम्भव उत्पत्तिर्य
सः । तत्पुत्र इत्यर्थः । रमणीयानामुत्कृष्टानां गुणानां सौन्दर्यादीनामालयो निल

दूसरा बालक यही है ऐसा निश्चय कर लिया । फिर समझा बुझाकर तथा कुछ द्रव्यादि दे
उस भीलिनीसे वह बालक ले लिया तथा उसका नाम अपहारवर्मा रख दिया और महिषी
सहेजकर कह दिया—'हे देवि ! इसे पालो' ।

(६६) एक दिन वामदेव मुनिके शिष्य सोमदेवशर्माने एक बालक को राजाके समक्ष र
कर निवेदन किया—हे देव ! मैं रामतीर्थमें स्नानार्थ गया था । वहाँसे लौटते समय मु
मार्गमें—वनदेशमें—एक वृद्धा इस सुन्दर बालकको लिए मिली । मैंने उनसे पूछा—
वृद्धे ! तुम कौन हो ? क्यों इस निर्जन वनमें अकेली आयासके साथ बालक लिये घूमती हो

(६७) वृद्धाने उत्तर देते हुए कहा—'हे मुनिवर ! कालयवन नामक एक महाद्वीप है
उसमें कालगुप्त नामक एक धनिक वैश्य रहता है । उसकी नयनाभिरामा सुवृत्ता नाम
पुत्रीसे इस द्वीपसे गये हुए मगधराजके मन्त्रिपुत्र रत्नोद्भवने परिणय किया । वह रत्नो
अति सुन्दर अर्थात् रमणीयता का कोष था तथा सम्पूर्ण पृथ्वीतलपर पर्यटन कर चुका

गुणालयो भ्रान्तभूवलयो मनोहारी व्यवहार्युपयम्य सुवस्तुसंपदा श्वशुरेण संमानितोऽभूत् । कालक्रमेण नताङ्गी गर्भिणी जाता ।

(६८) ततः सोदरविलोकनकौतूहलेन रत्नोद्भवः कथंचिच्छ्वशुरमनुनीय चपललोचनया सह प्रवहणमारुह्य पुष्पपुरमभिप्रतस्थे । कल्लोलमालिकाभिहतः पोतः समुद्राम्भस्यमज्जत् ।

(६९) गर्भभरालसां तां ललनां धात्रीभावेन कल्पिताहं कराभ्यामुद्वहन्ती फलकमेकमधिरुह्य दैवगत्या तीरभूमिमगमम् । सुहृज्जनपरिवृतो रत्नोद्भवस्तत्र निमग्नो वा केनोपायेन तीरमगमद्वा न जानामि । क्लेशस्य परां काष्ठामधिगता सुवृत्तास्मिन्नटवीमध्येऽद्य सुतमसूत । प्रसववेदनया विचेतना सा प्रच्छायशीतले तरुतले निवसति । विजने वने स्थातुमशक्यतया

आधार इति यावत् भ्रान्तं पर्यटितं भुवः पृथिव्या वलयं मण्डलं येनासौ । व्यवहारी वाणिज्यकर्ता । उपयम्य विवाह्य । सुवस्तुसम्पदा शोभनद्रव्यसमृद्धया करणे तृतीया । उत्कृष्टवस्तून्युपहारीकृत्येत्यर्थः । संमानितः सत्कृतः । नताङ्गी सुवृत्ता ।

(६८) सोदराणां भ्रातॄणां विलोकने दर्शने यत्कुतूहलं कौतुकं तेन । चपले चञ्चले लोचने नयने यस्यास्तया । प्रवहणं नौकाम् । कल्लोलानां महातरङ्गाणां मालिकया परम्परयाऽभिहतस्ताडितः । पोतः प्रवहणम् । अमज्जत् निमग्नः ।

(६९) गर्भभरेण गर्भभारेणालसां जडीकृताम् । ललनां स्त्रियम् । धात्रीभावेन धात्रीरूपेण । फलकं काष्ठखण्डम् । दैवगत्या दैवात् । सुहृज्जनैर्मित्रवर्गैः परिवृतः परिवेष्टितः । तत्र समुद्रे । परां काष्ठां अतिशयम् । असूत प्रसूतवती । प्रसववेदनया प्रसवकालिकपीडया । विचेतना संज्ञारहिता । प्रच्छायेन प्रचुरच्छायया शीतले शिशि-

---

व्यापारमें भी अतिकुशल था । श्वशुरने अतुल सम्पत्तिको देकर उसका सम्मान किया था । कुछ समय पश्चात् वह वैश्यपुत्री नतांगी गर्भवती हो गयी ।

(६८ तब भाइयोंको देखनेके लिए उद्विग्न रत्नोद्भवने अपने श्वशुरसे प्रार्थना की और उनसे विदाई लेकर चपललोचना पत्नी के साथ नौकापर पुष्पपुरके लिए प्रस्थान किया ।

(६९) दैववश वह नौका समुद्रकी तरंगोंसे अभिहत होकर जलमें डूब गयी । भगवत् कृपासे धात्रीभावसे नियुक्त मैं उस वैश्यकन्याको सम्हाले हुए, जो गर्भकी पीडासे उस समय अतिदुखी थी तथा अलसा रही थी, काठके एक तख्तेपर बैठकर समुद्रतटपर आ लगी हम लोगोंको नहीं मालूम कि परिजनोंके साथ रत्नोद्भव डूब गये या कहीं तीरपर जा लगे । क्लेशकी पराकाष्ठाको प्राप्त हुई उस सुवृत्ताने इसी समय इस वनमें पुत्र उत्पन्न किया है । प्रसववेदनासे मूर्च्छित वह साध्वी [illegible] बैठी है । निर्जन [illegible]

जनपदगामिनं मार्गमन्वेष्टुमुद्युक्तया मया विवशायास्तस्याः समीपे बालकं निक्षिप्य गन्तुमनुचितमिति कुमारोऽप्यनायि' इति।

(७०) तस्मिन्नेव क्षणे वन्यो वारणः कश्चिददृश्यत। तं विलोक्य भीता सा बालकं निपात्य प्राद्रवत्। अहं समीपलतागुल्मके प्रविश्य परीक्षमाणोऽतिष्ठम्, निपतितं बालकं पल्लवकवलमिवाददति गजपतौ कण्ठीरवो महाग्रहेण न्यपतत्। भयाकुलेन दन्तावलेन झटिति वियति समुत्पात्यमानो बालको न्यपतत्। चिरायुष्यत्तया स चोन्नततरुशाखासमासीनेन वानरेण केनचित्पक्वफलबुद्ध्या परिगृह्य फलेतरतया विततस्कन्धमूले निक्षिप्तोऽभूत्। सोऽपि मर्कटः क्वचिदगात्।

रे। जनपदगामिनं लोकालयप्रापकम्। विवशाया विकलायाः। आनायि आनीतं मयेति शेषः।

(७०) वने भव इति वन्य आरण्यक इत्यर्थः। वारणो गजः। सा धात्री। प्राद्रवत् पलायत। अहं वामदेवशिष्यः। समीपलतागुल्मके समीपस्थलतागृहे। परीक्षमाणः परितो विलोकयन्। पल्लवकवलं किसलयग्रासम्। आददति गृह्णति सतीति शेषः। कण्ठीरवः सिंहः। भीमो भयङ्करो रवो गर्जितं यस्य सः। महाग्रहेण अधिकावेशेन दन्तावलेन हस्तिना। वियति आकाशे। समुत्पात्यमानः समुत्क्षिप्यमाणः। चिरायुष्यत्तया दीर्घजीवितया। स बालकः। उन्नतस्योच्छ्रितस्य तरोर्वृक्षस्य शाखायां समासीनेनोपविष्टेन। पक्वफलबुद्ध्या पक्वफलभ्रान्त्या। फलेतरतया इदं फलं नेति हेतोः। वितते विस्तृते स्कन्धस्य वृक्षप्रकाण्डस्य मूले मूलदेशे। मर्कटो वानरः।

अनुचित होगा। अतः नगरकी ओर जाने वाले मार्गका अन्वेषण करनेमें मैं व्यस्त हूँ। वेदनासे मूर्छित उस रमणीके समीप बालक छोड़ना ठीक न समझ मैं इसे अपने साथ लिये हुए हूँ।

(७०) इसी समय एक मतवाला जंगली हाथी वहाँ दौड़ पड़ा। उसे देखते ही वह वृद्धा इस बालकको वहींपर रखकर भाग गयी। मैं वहींपर पासके लताकुञ्जमें बैठकर यह देखने लगा कि देखें अब क्या होता है। ज्योंही वह गजराज भूमिपर निपतित इस बालकको नये पल्लवके ग्रासके समान उठानेको तत्पर हुआ त्योंही भयंकर शब्द करते हुए एक शेरने उस हाथीपर आक्रमण कर दिया।' उस व्याघ्रके भयसे त्रस्त उस हाथीने उस बालकको ऊपरकी ओर उछालकर फेंक दिया। दीर्घायु होनेके कारण उस बालकको एक बन्दरने, जो एक विशाल पेड़की शाखापर बैठा था, पका हुआ फल समझकर लोक लिया। और फल न होनेसे उस बन्दरने इसे एक चौड़ी घनी डालपर रख दिया इस कारण यह बालक पृथ्वीपर गिरनेसे बच गया। वह वानर कहीं चला गया।

(७१) बालकेन सत्त्वसंपन्नतया सकलक्लेशसहेनाभावि । केसरिणा करिणं निहत्य कुत्रचिदगामि । लतागृहान्निर्गतोऽहमपि तेजःपुञ्जं बालकं शनैरवनीरुहादवतार्य वनान्तरे वनितामन्विष्याविलोक्यैनमानीय गुरवे निवेद्य तन्निदेशेन भवन्निकटमानीतवानस्मि' इति ।

(७२) सर्वेषां सुहृदामेकदैवानुकूलदैवाभावेन महदाश्चर्यं बिभ्राणो राजा 'रत्नोद्भवः कथमभवत्' इति चिन्तयंस्तन्नन्दनं पुष्पोद्भवनामधेयं विधाय तदुदन्तं व्याख्याय सुश्रुताय विषादसंतोषावनुभवंस्तदनुजतनयं समर्पितवान् ।

(७३) अन्येद्युः कंचन बालकमुरसि दधती वसुमती वल्लभमभि-

---

(७१) सत्त्वसम्पन्नतया बलशालितया । सकलक्लेशसहेन सर्वप्रकारक्लेशसहिष्णुना । केसरिणा सिंहेन । तेजसां पुञ्जं राशिं तेजस्विनमित्यर्थः । शनैर्मन्दं मन्दम् । अवनीरुहाद् वृक्षात् । अविलोक्य अप्राप्येत्यर्थः । एनं बालकम् । निवेद्य-कथयित्वा । तन्निदेशेन गुरोराज्ञया ।

(७२) एकदैव युगपदेव । अनुकूलदैवाभावेन प्रतिकूलदैववशात् । महदाश्चर्यं परमविस्मयम् । बिभ्राणो धारयन् । कथं सर्वेषामस्माकं सममेव दैवं प्रतिकूलं जातमिति विस्मयाकुलः सन्निति भावः । राजाराजवाहनः । रत्नोद्भवः कथमभवत्-रत्नोद्भवस्य का गतिर्जाता, तस्य किं जातमिति तात्पर्यम् । पुष्पोद्भवः नामधेयं नाम यस्य तम् । तदुदन्तं पूर्वोक्तं वृत्तान्तम् । व्याख्याय उक्त्वा । सुश्रुताय रत्नोद्भवस्य ज्येष्ठसहोदराय । विषादसन्तोषौ विषादहर्षौ—रत्नोद्भवस्य विनाशाद् विषादः तत्पुत्रस्य लाभात्सन्तोष इति भावः ।

(७३) अन्येद्युः अन्यस्मिन् दिने । उरसि वक्षसि । दधती धारयन्ती । वल्लभं

---

(७१) सत्त्वसम्पन्न शक्तिके प्रभावसे बालकने भी कष्टोंको सह लिया । वह सिंह भी उस गजपतिको मारकर चला गया । तब मैंने लता-कुञ्जसे बाहर आकर तेजःपुञ्जरूपवाले इस बालकको वृक्षपरसे धीरेसे उतारा और वनमें इधर-उधर उस वृद्धाको खोजा । परन्तु खोजनेपर भी वह वृद्धा मुझे न मिली और मैंने इस बालकको लाकर गुरुदेवको दे दिया । फिर उनकी आज्ञा शिरोधार्य करके इसे आपके पास लाया हूँ ।

(७२) राजा हंसवाहन विचारने लगे—दैव प्रतिकूल होनेसे मेरे सभी मित्रोंपर एक साथ आपत्ति आयी । आश्चर्य है ! अब रत्नोद्भवका क्या हुआ ? ऐसा सोचकर इसपर चिन्तित भी हो गये । इसके पश्चात् उन्होंने इस लड़केका नाम पुष्पोद्भव रखा और सारा वृत्त सुश्रुतको सुनाकर विषाद एवं हर्षके साथ उसे समर्पण कर दिया ।

(७३) एक दिन किसी एक बालकको गोदमें लिये हुए महारानी वसुमती महाराजके

गता। तेन 'कुत्रत्योऽयम्' इति पृष्टा समभाषत—'राजन्! अतीतायां रात्रौ काचन दिव्यवनिता मत्पुरतः कुमारमेनं संस्थाप्य निद्रामुद्रितां मां विबोध्य विनीताब्रवीत्—'देवि! त्वन्मन्त्रिणो धर्मपालनन्दनस्य कामपालस्य वल्लभा यक्षकन्याहं तारावली नाम, नन्दिनी मणिभद्रस्य। यक्षेश्वरानुमत्या मदात्मजमेतं भवत्तनूजस्याम्भोनिधिवलयवेष्टितक्षोणीमण्डलेश्वरस्य भाविनो विशुद्धयशोनिधे राजवाहनस्य परिचर्याकरणायानीतवत्यस्मि। त्वमेनं मनोजसंनिभमभिवर्धय' इति विस्मयविकसितनयनया मया सविनयं सत्कृता स्वक्षी यक्षी साप्यदृश्यतामयासीत्' इति।

पतिम्। तेन राज्ञा। कुत्र भव इति कुत्रत्य इति कुत्रेत्यव्ययात्त्यप्प्रत्ययः। अयं बालकः कुत्रोत्पन्नः—कस्य पुत्र इति भावः। अतीतायां गतायाम्। दिव्यवनिता स्वर्गीया स्त्री। निद्रया मुद्रितां निमीलितनयनाम्। विबोध्य प्रबोध्य। वल्लभा पत्नी। यक्षेश्वरस्य कुबेरस्यानुमत्याऽऽदेशेन। भवत्यास्तव तनूजस्य नन्दनस्य। भाविनो भविष्यतः। अम्भोनिधिः समुद्र एव वलयः कटकस्तेन वेष्टितं यत् क्षोणीमण्डलं भूमण्डलं तस्येश्वरः पतिः शासक इत्यर्थः। विशुद्धस्य निर्मलस्योज्ज्वलस्येति यावत्। यश सः कीर्तेर्निधिर्निधानं तस्य। परिचर्येति शुश्रूषाकरणायेत्यर्थः। मनोजस्य मनोजेन वा सन्निभः—कामदेवतुल्यः सौन्दर्येणेति यावत्। अभिवर्द्धय पालय। विस्मयेनाश्चर्यरसेन विकसिते प्रफुल्ले नयने नेत्रे यस्यास्तया। सत्कृता संमानिता। स्वक्षी—सुशोभने अक्षिणी नेत्रे यस्याः सा। यक्षी यक्षकुलोत्पन्ना न तु यक्षपत्नी कामपालस्य यक्षत्वाभावात् अदृश्यतामन्तर्धानम्।

समीप आयी। राजाने उन्हें देखकर पूछा—'यह बालक कहाँसे आया।' उत्तरमें उन्होंने कहा—हे महाराज! गत रात्रिमें एक स्वर्गांगना मेरे समीप निद्रावस्थामें आयी और इस सुकुमार कुमारको मेरी गोदीमें रखकर नम्रतासे विनयपूर्वक बोली—'मैं मणिभद्र नामक यक्षकी कुमारी हूँ तथा आपके अमात्य धर्मपालके सुत कामपालकी स्त्री हूँ। मेरा नाम तारावली है। यक्षेश्वर महाराजकी अनुमतिसे मैं इस बालकको आपके समीप आपके पुत्र राजवाहनकी सेवाके लिए लायी हूँ। कुमार राजवाहन भविष्यमें समुद्रोंसे परिवेष्टित समस्त भूमण्डलका चक्रवर्ती राजा कीर्तिशाली नरपति होगा। अत एव कामदेवके सदृश अति रम्य इस बालकका आप लालन-पालन करें। ये सब बातें सुनते ही मैं जाग पड़ी और नेत्रोंको खोलकर आश्चर्य करने लगी तथा अति विनयसे मैंने उस यक्षिणीका स्वागत किया। स्वागतके बाद वह तुरन्त ही वहाँसे अदृश्य होकर चली गयी।

(७४) कामपालस्य यक्षकन्यासंगमे विस्मयमानमानसो राजहंसो रञ्जितमित्रं सुमित्रं मन्त्रिणमाहूय तदीयभ्रातृपुत्रमर्थपालं विधाय तस्मै सर्वं वार्तादिकं व्याख्यायादात् ।

(७५) ततः परस्मिन्दिवसे वामदेवान्तेवासी तदाश्रमवासी समाराधितदेवकीर्ति निर्भर्त्सितमारमूर्ति कुसुमसुकुमारं कुमारमेकमवगमय्य नरपतिमवादीत्—'देव ! विलोलालकं बालकं निजोत्सङ्गतले निधाय रुदतीं स्थविरामेकां विलोक्यावोचम्—'स्थविरे ! का त्वम्, अयमर्भकः कस्य नयनानन्दकरः, कान्तारं किमर्थमागता, शोककारणं किम्' इति ।

(७६) सा करयुगेन बाष्पजलमुन्मृज्य निजशोकशङ्कूत्पाटनक्षम-

---

(७४) यक्षकन्यासङ्गमे यक्षीविवाहे । विशेषेण स्मयमानं आश्चर्यान्वितं मानसं मनो यस्य सः । रञ्जितानि स्वभावेनावर्जितानि मित्राणि सुहृदो येन तम् । सुमित्रं तन्नामानं कामपालज्येष्ठभ्रातरम् । अर्थपालं तन्नामानम् ।

(७५) अन्ते वसतीति अन्तेवासी—वामदेवस्यान्तेवासी छात्रः । 'छात्रान्तेवासिनौ शिष्ये' इत्यमरः । तस्य वामदेवस्याश्रमवासी आश्रमस्थः । समाराधिता प्राप्त्यर्थं संसेविता देवानां कीर्तिर्येन तं देवतुल्यकीर्त्तिमन्तमित्यर्थः । निर्भर्त्सिता स्वसौन्दर्येण तिरस्कृता मारस्य कन्दर्पस्य मूर्त्तिः स्वरूपं येन तम् । कुसुमवत् पुष्पमिव सुकुमारं कोमलम् । अवगमय्य प्रापय्य पुरतः संस्थाप्येत्यर्थः । विलोलाश्चञ्चला अलकाः कुन्तला यस्य तम् । उत्सङ्गतले अङ्के । स्थविरां वृद्धाम् । अर्भकः शिशुः कान्तारं दुर्गममार्गम् ।

(७६) बाष्पजलम् अश्रु । उन्मृज्यापनीय । निजस्य स्वस्य शोक एव शङ्कुः

---

(७४) कामपालका यक्षकुमारीसे सम्पर्क हुआ । इसपर राजहंसका चित्त विस्मित हुआ । तब उसने सुहृदोंको सुखी बनानेवाले सुगन्ध नामक मन्त्रीको बुलाया और समस्त वृत्तान्त सुनाकर उस बालकका नाम अर्थपाल रखा ।

(७५) तत्पश्चात् कुछ दिनोंके अनन्तर एक दिन उसी आश्रमके निवासी वामदेव मुनिके शिष्यने आकर देवोंके समान कीर्तिशाली तथा कामदेवके समान सुन्दर एवं सुकुमार एक बालकको वहाँ लाकर राजासे कहा—'हे देव, मैं तीर्थाटन करते हुए कावेरी नदीके तटपर गया था । वहाँपर चंचलकेशकलापवाले इस बालकको अपनी गोदीमें रखकर रोती हुई एक वृद्धाको देखा तथा रोनेका कारण पूछा—'ऐ वृद्धे, तुम कौन हो ? यह कुमार किसका है ? तुम इस वनमें क्यों आयीं ? तुम इतनी दुःखी क्यों हो रही हो ?'

(७६) मेरी जिज्ञासापर वृद्धाने, दोनों हाथोंसे अपने आँखोंके आँसुओंको पोंछकर और

मिव मामवलोक्य शोकहेतुमवोचत्—'द्विजात्मज ! राजहंसमन्त्रिणः सितवर्मणः कनीयानात्मजः सत्यवर्मा तीर्थयात्रामिषेण देशमेनमागच्छत्। स कस्मिंश्चिदग्रहारे काली नाम कस्यचिद् भूसुरस्य नन्दिनीं विवाह्य तस्या अनपत्यतया गौरीं नाम तद्भगिनीं काञ्चनकान्ति परिणीय तस्यामेकं तनयमलभत। काली सासूयमेकदा धात्र्या मया सह बालमेनमेकेन मिषेणानीय तटिन्यामेतस्यामक्षिपत्। करेणैकेन बालमुद्धृत्यापरेण प्लवमाना नदीवेगागतस्य कस्यचित्तरोः शाखामवलम्ब्य तत्र शिशुं निधाय नदीवेगेनोह्यमाना केनचित्तरुलग्नेन कालभोगिनाहमदशि। मदवलम्बीभूतो भूरुहोऽयमस्मिन् देशे तीरमगमत्। गरलस्योद्दीपनतया मयि मृतायामरण्ये कश्चन शरण्यो नास्तीति मया शोच्यते' इति।

कीलः तस्योत्पाटने उद्धरणे क्षमं समर्थम्। शोकस्य हेतुं कारणम्। कनीयान् कनिष्ठः तीर्थयात्राया मिषेण कपटेन। अग्रहारे ग्रामे। भूसुरस्य ब्राह्मणस्य। अनपत्यतया अपुत्रकतया। काञ्चनस्य स्वर्णस्येव कान्तिरौज्ज्वल्यं यस्यास्ताम्। परिणीय विवाह्य। सासूयं विद्वेषेण। मिषेण छलेन। तटिन्यां नद्याम्। उद्धृत्य धारयित्वा। अपरेण करेणेति शेषः। प्लवमाना तरन्ती। नदीवेगागतस्य नद्या वेगवशादुपस्थितस्य। तरोः वृक्षस्य। निधाय संस्थाप्य। उह्यमाना नीयमाना। तरुलग्नेन वृक्षारूढेन। कालभोगिना कृष्णसर्पेण अदर्शि दष्टा। मदवलम्बीभूतो मदाश्रयीभूतः। भूरुहो वृक्षः। अगमत् प्रापत्। गरलस्य विषस्य। उद्दीपनतया उत्कटतया। मृतायां सत्यामिति शेषः। शरण्यो रक्षकः। शोच्यते खेदः क्रियते।

मनमें यह समझकर कि इस व्यक्तिद्वारा मेरा शोकरूपी अङ्कुश निकाल दिया जायगा—यह समर्थ शक्तिवाला है। मुझसे कहना प्रारम्भ किया—'हे विप्रसुत ! राजहंसके मन्त्री सितवर्मा का छोटा लड़का सत्यवर्मा तीर्थाटनके लिये इस देशमें आया था। किसी अग्रहार (राजाके द्वारा संकल्प करके दिये हुए ग्राम) में एक विप्रकी कन्या, जिसका नाम काली था, उससे विवाह किया, परन्तु उससे सन्तति न होनेपर उसने उसीकी छोटी बहन गौरीसे उद्वाह किया जो स्वर्णसी सुन्दरी थी। उसको एक पुत्र हुआ। एक दिन काली ईर्ष्याके वशीभूत होकर उस बालकके सहित मुझे (मैं उसकी धात्री थी) किसी बहाने नदीके तीरपर ले आयी और हम दोनोंको नदीमें ढकेलकर भाग गयी। एक हाथसे बालकको पकड़े हुए मैं दूसरे हाथसे नदीमें तैरने लगी। इतनेमें नदीके बहावमें बहता हुआ एक वृक्ष आया जिसकी डालपर बालकको बिठा दिया और नदीमें उसी पेड़को पकड़कर नदीके वेगके सहारे तैरती चली। उस वृक्षमें लिपटे किसी सर्पने मुझे काट लिया। उस वृक्षके साथ मैं इस प्रदेशमें तीरपर आ लगी। विष की गर्मीसे मेरे मर जानेपर इस बालकका कोई भी रक्षक नहीं है यह सोचकर रो रही हूँ।'

(७७) ततो विषमविषज्वालावलीढावयवा सा धरणीतले न्यपतत् । दयाविष्टहृदयोऽहं मन्त्रबलेन विषव्यथामपनेतुमक्षमः समीपकुञ्जेष्वौषधिविशेषमन्विष्य प्रत्यागतो व्युत्क्रान्तजीवितां व्यलोकयम् ।

(७८) तदनु तस्याः पावकसंस्कारं विरच्य शोकाकुलचेता बालमेनमगतिमादाय सत्यवर्मवृत्तान्तवेलायां तन्निवासाग्रहारनामधेयस्याश्रुततया तदन्वेषणमशक्यमित्यालोच्य भवदमात्यतनयस्य भवानेवाभिरक्षितेति भवन्तमेनमनयम्' इति ।

(७९) तन्निशम्य सत्यवर्मस्थितेः सम्यगनिश्चिततया खिन्नमानसो

---

(७७) विषमयाऽविषह्यया विषस्य ज्वालया शिखया पीडयेत्यर्थः । अवलीढाः व्याप्ता अवयवा अङ्गानि यस्याः सा । दयया करुणया आविष्टमाक्रान्तं हृदयं चेतो यस्य सः । मन्त्रबलेन मन्त्रशक्त्या । अपनेतुं दूरीकर्तुम् । समीपकुञ्जेषु निकटस्थलतादिपिहितस्थानेषु । व्युत्क्रान्तजीवितां मृताम् ।

(७८) तदनु तदनन्तरम् । पावकसंस्कारं विरच्य अग्निसंस्कारं कृत्वा तद्देहं भस्मसात्कृत्वेत्यर्थः । शोकेन खेदेनाकुलं व्याप्तं चेतो यस्य सः । अगतिमनाथम् । सत्यवर्मणो वृत्तान्तश्रवणवेलायां वार्ताश्रवणसमये तस्य सत्यवर्मणो निवासाग्रहारस्य वासस्थलभूतस्य ग्रामस्य यन्नामधेयं नाम तस्याश्रुततया अश्रवणेन । अभिरक्षिता पालकः । अनयं प्रापितवानस्मि । णीञ्प्रापणे इत्यस्य धातोर्लङि रूपम् ।

(७९) सत्यवर्मस्थितेः तदवस्थानस्य जीवनस्य वा सम्यगनिश्चिततया सोऽत्रे-

---

(७७) इतनी बात कहते-कहते भयङ्कर विष की ज्वालासे, जो सब शरीरमें व्याप्त हो गया थी, वह अचानक भूमिपर गिर गयी । मुझे उसकी ऐसी दशापर दया आ गयी । परन्तु मैं मन्त्र नहीं जानता था इससे मन्त्रबलसे उसकी पीड़ा नष्ट न कर सका किन्तु समीपके लतागृहसे मैं जब औषधि खोजकर आया तो देखा कि उसके प्राण-पखेरू उड़ चुके थे ।

(७८) तत्पश्चात् मैंने उसकी दाह-क्रिया की । और इस शोकान्वित चित्तवाले बालकको अपने पास रख लिया । परन्तु सत्यवर्माके चरित्रके श्रवणके समय उसके निवासस्थान अग्रहारका नाम तो सुना किन्तु पता न पा सका अतः उस स्थानका अन्वेषण करना अशक्य समझा । हे प्रभो, आपके मन्त्रीका यह बालक है—ऐसा विचार करके आपके समीप ले आया हूँ ।

(७९) उपर्युक्त वृत्तान्तको जानकर तथा सत्यवर्माकी अनिश्चित स्थिति का ध्यान करके

नरपतिः सुमतये मन्त्रिणे सोमदत्तं नाम तदनुजतनयमर्पितवान्। सोऽपि सोदरमागतमिव मन्यमानो विशेषेण पुपोष।

(८०) एवं मिलितेन कुमारमण्डलेन सह बालकेलीरनुभवन्नधिरूढानेकवाहनो राजवाहनोऽनुक्रमेण चौलोपनयनादिसंस्कारजातमलभत। ततः सकललिपिज्ञानं निखिलदेशीयभाषापाण्डित्यं षडङ्गसहितवेदसमुदायकोविदत्वं काव्यनाटकाख्यानकाख्यायिकेतिहासचित्रकथासहितपुराणगणनैपुण्यं धर्मशब्दज्योतिस्तर्कमीमांसादिसमस्तशास्त्रनिकरचातुर्यं कौटिल्य

वावतिष्ठते न वेति जीवति न वेति वा सन्दिग्धतया। खिन्नं खेदाकुलं मानसं यस्य सः। नरपतिः राजा राजहंस इत्यर्थः। सोऽपि सुमतिरपि। सोदरं सत्यवर्माणमित्यर्थः। पुपोष वर्द्धयामास।

(८०) एवमनेन प्रकारेण। मिलितेन एकत्र सङ्गतेन। कुमारमण्डलेन कुमारसंघेन। बालकेलीः, शैशवोचितक्रीडाः। अधिरूढानि समारूढान्यनेकानि नानाविधानि वाहनानि हस्त्यश्वादीनि येन सः। कदाचिद् गजं कदाचिच्चाश्वमारुरोहेति भावः। अनुक्रमेण यथाक्रमम्। सकललिपिज्ञानं सर्वविधअक्षरसंस्थानपरिचयम्। षडङ्गैः शिक्षाकल्पादिरूपैर्वेदाङ्गैः सहिते युक्ते वेदसमुदाये वेदसमूहे कोविदत्वं पाण्डित्यम्। काव्यं रामायणादि, नाटकं रूपकादि, आख्यानकं चूर्णम्, आख्यायिका कादम्बर्यादिकथा, इतिहासो महाभारतादि, चित्रकथा रमणीयकथा। एतः सहितो युक्तो यत्पुराणगणः वेदव्यासरचिताष्टादशपुराणानि तत्र नैपुण्यं पाटवम्। धर्मेत्यादि प्रत्येकं शास्त्रेण सम्बध्यते तेन धर्मशास्त्रं स्मृतिः, शब्दशास्त्रं व्याकरणं, ज्यौतिषं, तर्कशास्त्रं न्यायः, मीमांसा पूर्वोत्तरभेदेन द्विविधा, जैमिनीयदर्शनं वेदान्तदर्शनञ्चेत्यादिषु, आदिपदेन धनुर्वेदादिसंग्रहः, शास्त्रनिकरेषु शास्त्रसमूहेषु चातुर्यं अभिज्ञत्वम्। कौटिल्यका-

---

राजहंस दुखी हुए और सुमति नामक अमात्यको बुलवाकर उस बालकको उन्हें सौंप दिया और उसका सोमदत्त नाम भी रख दिया। उस सुमति मन्त्रीने उसे पाकर भाईके आनेके समान सुख प्राप्त किया तथा अति प्रीतिसे उसका लालन-पालन करने लगा।

(८०) इस रीतिसे राजवाहन उन मिले हुए कुमारोंके साथ बालक्रीडा करता हुआ बढ़ने लगा और सवारियोंके आरोहणमें निपुण उस राजवाहनके क्रमसे चौल तथा उपनयनसहित वेदका कोविदत्व, काव्य, नाटक, आख्यायिका, आख्यानक, इतिहास, चित्रकथासहित पुराणोंकी विज्ञता, धर्मशास्त्र, ज्योतिःशास्त्र, न्यायशास्त्र, मीमांसा प्रभृति सकल शास्त्रोंकी चतुरता, कौटिल्य, कामन्दकीय आदि नीतिग्रन्थोंकी कुशलता, वीणा आदि सभी वाद्यकलाओंमें

कामन्दकीयादिनीतिपटलकौशलं वीणाद्यशेषवाद्यदाक्ष्यं संगीतसाहित्यहारित्वं मणिमन्त्रौषधादिमायाप्रपञ्चचुञ्चुत्वं मातङ्गतुरङ्गादिवाहनारोहणपाटवं विविधायुधप्रयोगचणत्वं चौर्यदुरोदरादिकपटकलाप्रौढत्वं च तत्तदाचार्येभ्यः सम्यग्लब्ध्वा यौवनेन विलसन्तं कुमारनिकरं निरीक्ष्य महीवल्लभः सः 'अहं शत्रुजनदुर्लभः' इति परमानन्दमविन्दत ।

इति श्रीदण्डिनः कृतौ दशकुमारचरिते कुमारोत्पत्तिर्नाम प्रथम उच्छ्वासः ।

णक्यस्तेन प्रणीतं कौटिल्यं, कामन्दकरचितं कामन्दकीयम् आदिपदेन शुक्रनीत्यादिसंग्रहः । इत्यादीनि यानि नीतिपटलानि नीतिशास्त्रसमुदायास्तेषु कौशलं नैपुण्यम् । वीणादिषु वीणाप्रभृतिष्वशेषेषु सकलेषु वाद्येषु दाक्ष्यं दक्षताम् । सङ्गीतसाहित्येषु नृत्यगीतादिशिल्पकलासु हारित्वं मनोहारित्वम् । मन्त्रिमन्त्रौषधादिभिर्यो मायाप्रपञ्चः कपटप्रबन्धस्तेन वित्त इति 'तेन वित्तश्चुञ्चुप्चणपावि'ति चुञ्चुप्प्रत्ययः, ततस्तस्य भावस्तथा । कपटप्रबन्धकुशलत्वमित्यर्थः । विविधानामायुधानामस्त्राणां प्रयोगेन वित्तस्तस्य भावस्तथा । अत्रापि तेनैव चणप् । चौर्यं स्तेयं, दुरोदरं द्यूतं तदादिकपटकलासु प्रौढत्वं प्रावीण्यम् । तत्तदाचार्येभ्यस्तत्तच्छास्त्रनिष्णातेभ्यः । लब्ध्वा अधिगम्य । कृत्येषु कार्येषु अनलसमालस्यरहितमुद्यमशीलमित्यर्थः । महीवल्लभो राजा । शत्रुजनदुर्लभः शत्रुभिरपराजेयः । अविन्दत अलभत ।

इति श्रीताराचरणभट्टाचार्यकृतायां बालविबोधिनीसमाख्यायां दशकुमारचरितव्याख्यायां प्रथमोच्छ्वासः ।

'इता, संगीत, साहित्य, मणि, मन्त्र, औषध आदि माया-प्रपञ्चोंमें दक्षता, हाथी, घोड़े, रथादि सवारियोंपर चढ़नेकी क्षमता; अनेक प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंके चलानेमें पटुता; चोरी, जुआ, कपटकलामें प्रवीणता; आदि तत्तत् शास्त्रियोंसे अच्छी प्रकार सीखे हुए तरुणावस्थासे सुशोभित एवं कार्योंमें आलस्यरहित कुमारोंको देखकर राजा हंसवाहनने अपनेको कृतकृत्य माना तथा मनमें यह सोचा कि अब शत्रुजन मेरा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते—मैं अजेय हूँ और परमानन्दित होने लगा ।

इस प्रकारसे प्रथमोच्छ्वासकी बालक्रीडा हिन्दीटीका समाप्त हुई ।

द्वितीयोच्छ्वासः

(१) अथैकदा वामदेवः सकलकलाकुशलेन कुसुमसायकसंशयित-सौन्दर्येण कल्पितसौदर्येण साहसापहसितकुमारेण सुकुमारेण जयध्वजात-पवारणकुलिशाङ्कितकरेण कुमारनिकरेण परिवेष्टितं राजनमानतशिरसं समभिगम्य तेन तां कृतां परिचर्यामङ्गीकृत्य निजचरणकमलयुगलमिल-न्मधुकरायमाणकाकपक्षं विदलिष्यमाणविपक्षं कुमारचयं गाढमालिङ्ग्य मितसत्यवाक्येन विहिताशीरभ्यभाषत ।

---

(१) सकलासु निखिलासु कलासु नृत्यगीतादिविद्यासु कुशलेन निपुणेन । कुमारनिकरेणेत्यस्य विशेषणमेवमग्रेऽपि । कुसुमसायकः कन्दर्पः संशयितः कन्दर्पो वा तदन्यो वेति सन्दिग्धो यस्मात् तथाभूतं सौन्दर्यं यस्य तेन । यस्य सौन्दर्यं दृष्ट्वा जनस्य कन्दर्पभ्रमो भवतीत्यर्थः । कल्पितं परस्परं रचितं सौदर्यं सहोदरभावः बन्धुतेति यावत्, येन तेन साहसेन पराक्रमेण अपहसितस्तिरस्कृतः कुमारः कार्त्तिकेयो येन तेन कुमाराधिकवीर्यशालिनेत्यर्थः । सुकुमारेण कोमलशरीरेण । जयध्वजो जयपताका, आतपवारण छत्रं, कुलिशं वज्रं, तैरङ्कितौ चिह्नितौ करौ हस्तौ यस्य तेन । येषां करेषु ध्वजादिरेखाः सन्तीत्यर्थः । कुमारनिकरेण कुमारसमूहेन आनतशिरसं कृतन-मस्कारम् । तेन राज्ञा राजहंसेन । परिचर्यां सेवाम् अङ्गीकृत्य स्वीकृत्य । निजस्य (वामदेवस्य) चरणकमलयुगले पादपङ्कजद्वये मिलन्तः पतन्तः मधुकरायमाणा भ्रमरा इवाचरन्तः काकपक्षाः शिखण्डका यस्य तं वामदेवं प्रणमन्तमित्यर्थः । विदलिष्यमाणाः पराजेष्यमाणा विपक्षाः शत्रवो येन तम् । कुमारचयं राजवाहनादि-कुमारगणम् । गाढं निर्भरम् । मितं स्वल्पं सत्यमवितथं यद्वाक्यं तेन । परिमितसत्य-प्रियवचनेनेत्यर्थः । विहिताशीः कृताशीर्वादः ।

---

(१) तत्पश्चात् एकदा वामदेव मुनि, सभी कलाओंमें प्रवीण यही कामदेव है ऐसा जनोंके चित्तोंमें सन्देहको उत्पन्न करानेवाले और वेश भूषादिसे अत्यन्त रमणीय एवं साहसमें स्वामि कार्त्तिकेयका उपहास करनेवाले तथा जिनके हाथोंमें जयध्वज, छत्र एवं कुलिशके चिह्न है ऐसे सुकुमार कुमारोंके समुदायसे परिव्याप्त हुए प्रणतमस्तक महाराजके समीप गये । वहाँ जाकर राजा द्वारा की गयी सेवा स्वीकार की । तत्पश्चात् अपने पादपद्ममें प्रणाम करते समय जिनके काकपक्ष भ्रमरोंकी शोभाको धारण करनेवाले ज्ञात होते थे और भविष्यमें शत्रुदलका दलन करनेवाले थे ऐसे कुमारोंके समुदायका आलिङ्गन किया । फिर परिमित तथा सत्य वचनोंसे आशीर्वाद देकर कहने लगे—

(२) 'भूवल्लभ, भवदीयमनोरथफलमिव समृद्धलावण्यं तारुण्यं नुतमित्रो भवत्पुत्रोऽनुभवति । सहचरसमेतस्य नूनमेतस्य दिग्विजयारम्भसमय एषः । तदस्य सकलक्लेशसहस्य राजवाहनस्य दिग्विजयप्रयाणं क्रियाताम्' इति ।

(३) कुमारा माराभिरामा रामाद्यपौरुषा भस्मीकृतारयो रयोपहसितसमीरणा रणाभियानेन यानेनाभ्युदयाशंसं राजानमकार्षुः । तत्साचिव्यामितरेषां विधाय समुचितां बुद्धिमुपदिश्य शुभे मुहूर्ते सपरिवारं कुमारं विजयाय विससर्ज ।

(४) राजवाहनो मङ्गलसूचकं शुभशकुनं विलोकयन्देशं कंचिदति-

---

(२) भवदीयानां त्वदीयानां मनोरथानामभिलाषाणां फलमिव । समृद्धमतिशयेन वर्धितं लावण्यं सौन्दर्यं यस्मिन् तदिति तारुण्यविशेषणम् । नुतानि प्रशंसितानि मित्राणि सुहृदो यस्य सः । नूनं निश्चयेन । दिशां विजयस्यारम्भः प्रारम्भस्तस्य समयः कालः । अस्मिन्नेव समये दिग्विजयोद्योगः कर्तव्यः इत्यर्थः । सकलक्लेशसहस्य सत्त्वसम्पन्नतया सकलक्लेशसहिष्णोः । दिग्विजयप्रयाणं दिग्विजययात्रा ।

(३) मारः कन्दर्पस्तद्वदभिरामा मनोहराः । रामो दाशरथिरामो येषां ते तेषां पौरुषमिव पौरुषं पराक्रमो येषां ते । रुषा कोपेन भस्मीकृता विनाशिता अरयः शत्रवो येस्ते । रयेण वेगेनोपहसितस्तिरस्कृतः समीरणः पवनो यैस्ते । रणमभियातीति रणाभियानं तेन रणाभियानेन रणाभिमुखेन । यानेन यात्रया । अभ्युदयेऽभ्युन्नतौ आशंसा यस्य तम् । तस्य राजवाहनस्य साचिव्यं मन्त्रित्वं सहायत्वमिति यावत् । इतरेषां अन्यकुमाराणाम् । समुचितां विजययात्राया योग्याम् । सपरिवारं सपरिजनम् । विजयाय विजयं कर्तुमिति 'तुमर्थाच्च भाववचनादि'ति चतुर्थी । विससर्ज प्रेषयामास ।

(४) मङ्गलसूचकं शुभोदर्कज्ञापकम् । शुभशकुनं सुनिमित्तम् । तत्र विन्ध्याट-

---

(२) हे पृथिवीपति ! अनुकूलसुहृत् आपका पुत्र राजवाहन आपके मनोरथ फलकी तरह समृद्ध-लावण्य तथा युवावस्थाका अनुभव करता है । अतः सहचर वर्गोंके सहित उसके दिग्विजय करनेका यह समय अच्छा है । इसलिये उसे आप दिग्विजयार्थ भेज देवें ।

(३) कामदेवके सदृश मनोहर तथा श्रीरामचन्द्रादिके समान पराक्रमशील एवं कोपसे ही अरिवर्गको भस्म करनेमें समर्थ और वेगमें पवनको भी तिरस्कृत करनेवाले कुमारवर्गकी रणयात्राके द्वारा राज्यश्रीका अभ्युदय निश्चित होगा । यह बात परिज्ञात करके उस राजहंस ने अन्य कुमारोंको कुमार राजवाहनके साहाय्यके लिए नियुक्त किया तथा समुचित उपदेशों को देकर शुभ मुहूर्तमें परिजनोंके साथ राजवाहनको विजय करनेके लिए भेज दिया ।

(४) कुमार राजवाहन यात्रामें मंगलसूचक शुभ लक्षणों (शकुनों) को देखता हुआ

क्रम्य विन्ध्याटवीमध्यमविशत्। तत्र हेतिहतिकिणाङ्कं कालायसकर्कशकायं यज्ञोपवीतेनानुमेयविप्रभावं व्यक्तकिरातप्रभावं लोचनपरुषं कमपि पुरुषं ददर्श।

(५) तेन विहितपूजनो राजवाहनोऽभाषत—'ननु मानव, जनसङ्गरहिते मृगरहिते घोरप्रचारे कान्तारे विन्ध्याटवीमध्ये भवानेकाकी किमिति निवसति। भवदंसोपनीतं यज्ञोपवीतं भूसुरभावं द्योतयति। हेतिहतिभिः किरातरीतिरनुमीयते। कथय किमेतत्' इति।

(६) 'तेजोमयोऽयं मानुषमात्रपौरुषो नूनं न भवति' इति मत्वा स पुरुष-

---

व्याम्। हेतीनामस्त्राणां हतिभिः। प्रहारैर्ये किणाः शुष्कव्रणास्तेषामङ्काश्चिह्नानि यस्मिन् तम्। कालायस लोहमिव कर्कशः कठोरः कायो देहो यस्य तम्। यज्ञोपवीतेन यज्ञसूत्रेण। अनुमेयोऽनुमातुं योग्यो विप्रभावो द्विजत्वं यस्य तम्। व्यक्तः प्रकटितः किरातप्रभावो वनचरसामर्थ्यं येन तम्। यज्ञसूत्रेण ब्राह्मणोऽसावित्यनुमीयते, स्वरूपादिना तु किरातोऽयमिति स्पष्टं ज्ञायत इति भावः। लोचनयोर्नेत्रयोः परुषं कर्कशं भीषणदर्शनमित्यर्थः।

(५) तेन किरातवेषधारिणा पुरुषेण। विहितपूजनः कृतसत्कारः। जनसङ्गरहिते। मनुष्यसम्पर्कशून्ये। मृगहिते पशूनामेव हितकरे। घोरो भयजनकः प्रचारः सञ्चारो यस्मिंस्तस्मिन्। किमिति किमर्थम्। भवतस्तव अंसं स्कन्धदेशमुपनीतं प्राप्तम्। भूसुरभावं विप्रभावम्। द्योतयति सूचयति। हेतिहतिभिः शस्त्राघातचिह्नैः। किरातरीतिः। वनचरव्यवहारः। अनुमीयते तर्क्यते।

(६) तेजोमयः प्राचुर्ये मयट् तेन तेजःपुञ्जशरीर इत्यर्थः। अयमिति राजवाह-

---

विन्ध्याटवीमें प्रविष्ट हो गया। वहाँपर उसने एक भयंकर नेत्रवाले मनुष्यको देखा—जो जनेऊ धारण करनेसे तो ब्राह्मण ज्ञात होता था किन्तु, उसके शरीरपर अनेक आयुधोंके आघातोंके व्रण थे। उसका शरीर लोहेके समान कर्कश तथा काला दिखाई देता था। उसे देखनेसे ऐसा प्रतीत होता था जैसे कोई किरात हो।

(५) उस मनुष्यने कुमार राजवाहनका स्वागत-सत्कार किया। सत्कारके अनन्तर राजवाहनने पूछा—हे मानव! मनुष्योंसे विहीन इस विन्ध्याटवीके गहन वनमें क्यों आप निवास कर रहे हैं? यह वन तो हिरणोंके हितके लिए तथा हिंसक जानवरोंके विचरणयोग्य है। आपके कन्धेपर धारण किया हुआ यज्ञोपवीत 'आप ब्राह्मण' हैं ऐसा सूचित कर रहा है किन्तु, देहमें लगे शस्त्रास्त्रके घावोंसे आप किरातोंके समान आचरण करनेवाले हैं ऐसा प्रतीत हो रहा है। बतलावें इसका क्या कारण है?

(६) इस तेजःपुञ्जाकृतिवाले मनुष्यकी शक्ति साधारण पुरुषोंके समान नहीं है अतः

स्तद्वयस्यमुखान्नामजनने विज्ञाय तस्मै निजवृत्तान्तमकथयत्—'राजनन्दन, केचिदस्यामटव्यां वेदादिविद्याभ्यासमपहाय निजकुलाचारं दूरीकृत्य सत्यशौचादिधर्मव्रातं परिहृत्य किल्विषमन्विष्यन्तः पुलिन्दपुरोगमास्तदन्नमुपभुञ्जाना बहवो ब्राह्मणब्रुवा निवसन्ति, तेषु कस्यचित्पुत्रो निन्दापात्रचारित्रो मातङ्गो नामाहं सह किरातबलेन जनपदं प्रविश्य ग्रामेषु धनिनः स्त्रीबालसहितानानीयाटव्यां बन्धने निधाय तेषां सकलधनमपहरन्नुद्धृत्य वीतदयो व्यचरम्। कदाचिदेकस्मिन्कान्तारे मदीयसहचरगणेन जिघांस्यमानं भूसुरमेकमवलोक्य दयायत्तचित्तोऽब्रवम् 'ननु पापाः, न हन्तव्यो ब्राह्मण' इति।

नस्य निर्देशः। मानुषमात्रं मानुषप्रमाणं पौरुषं पराक्रमो यस्य सः। नूनमवश्यम्। मत्वा विचार्य। तस्य राजवाहनस्य वयस्यानां मित्राणां मुखात् तेषां कथनेनेत्यर्थः। नामजनने नाम आख्या जननमुत्पत्ति ते, कुलनामनीत्यर्थः। केचिदित्यस्य ब्राह्मणब्रुवा इत्यनेन सम्बन्धः। अपहाय परित्यज्य। निजकुलाचारं ब्राह्मणकुलोचितधर्मम्। धर्मव्रातं धर्मसमूहम्। परिहृत्य त्यक्त्वा। किल्विषं पापम्। 'पापं किल्विषकल्मषमि'त्यमरोक्तेः। पुलिन्दानां किरातानां पुरोगमा अग्रगाः, पुलिन्दाः पुरोगमा नेतारो येषां ते इति वा। तदन्नं म्लेच्छान्नमुपभुञ्जाना भक्षयन्तः। ब्राह्मणब्रुवा ब्राह्मणाधमाः। निन्दापात्रं गर्हणीयं चारित्रं चरितं यस्य सः। किरातबलेन शबरसैन्येन। धनिनो धनाढ्यान्। स्त्रीभिरबलाभिर्बालैः शिशुभिश्च सहितान् युक्तान्। उद्धृत्य विनाश्य। वीताऽपगता दया करुणा यस्य सः। जिघांस्यमानं हन्तुमिष्यमाणं हननार्थं नीयमानमिति भावः। भूसुरं ब्राह्मणम्। दयया करुणया आयत्तं आक्रान्तं चित्तं हृदयं यस्य सः। अब्रवमकथयम्।

यह अवश्य तेजस्वी पुरुष है ऐसा ज्ञातकर त॥ पूर्वसे ही राजवाहनके सुहृदोंसे उसका नाम और उत्पत्ति सुन चुकनेके कारण वह पुरुष राजवाहनसे अपना वृत्तान्त कहने लगा। उसने कहा—हे राजनन्दन ! इस विन्ध्याटवीमें अनेक कुत्सित विप्रोंका आवास है जिन्होंने वेदादि विद्याभ्यासको त्यागकर तथा ब्राह्मणोचित धर्माचार एवं सत्य-शौच आदि कुलाचारोंको छोड़कर पापाचारमें प्रविष्ट होकर म्लेच्छोंके अधीन रहना अपना धर्म बना लिया है और उन्हीं म्लेच्छोंका अन्न खाकर जीवन बिताना उनका प्रधान कार्य हो गया है। उन्हीं विप्रोंमेंसे एक चरित्रहीन, निन्दित विप्रपुत्र मैं भी हूँ। मेरा नाम मातंग है। इसी विपिनके किरात-भीलोंके साथ मैं भी नगरोंमें जाया करता था और पुत्र-कलत्रादिके सहित नगरोंसे धनिकोंको पकड़ लाया करता था तथा उन्हें बन्दी बनाकर सारा माल-असबाब छीन लेता था। इसी रीतिसे निर्दय होकर मैं घूमा करता था कि, एकदा किसी एक वनमें हमारे साथी लोग एक ब्राह्मणको मारने लगे। मुझे उसपर करुणा भर आयी और मैंने कहा—हे पापियो ! इस ब्राह्मण की हत्या न करो।

(७) ते रोषारुणनयना मां बहुधा निरभर्त्संयन् । तेषां भाषणपारुष्यमसहिष्णुरहमवनिसुररक्षणाय चिरं प्रयुध्य तैरभिहतो गतजीवितोऽभवम् ।

(८) ततः प्रेतपुरीमुपेत्य तत्र देहधारिभिः पुरुषैः परिवेष्टितं सभामध्ये रत्नखचितसिंहासनासीनं शमनं विलोक्य तस्मै दण्डप्रणाममकरवम् । सोऽपि मामवेक्ष्य चित्रगुप्तं नाम निजामात्यमाहूय तमवोचत्—'सचिव, नैषोऽमुष्य मृत्युसमयः । निन्दितचरितोऽप्ययं महीसुरनिमित्तं गतजीवितोऽभूत् । इतः प्रभृति विगलितकल्मषस्यास्य पुण्यकर्मकरणे रुचिरुदेष्यति । पापिष्ठैरनुभूयमानमत्र यातनाविशेषं विलोक्य पुनरपि पूर्वशरीरमनेन गम्यताम्' इति ।

---

(७) ते पुलिन्दाः । रोषेण क्रोधेन अरुणानि रक्तवर्णानि नयनानि नेत्राणि येषु ते । बहुधा नानाप्रकारेण । निरभर्त्संयन् अतर्जयन् । भाषणपारुष्यं कर्कशवचनानि असहिष्णुः सोढुमशक्तः । अवनिसुररक्षणाय ब्राह्मणत्राणाय । चिरं दीर्घकालम् । प्रयुध्य युद्धं कृत्वा । अभिहतः प्रहृतः । गतं जीवितं यस्य सः गतप्राणो मृत इति शेषः ।

(८) प्रेतपुरीं यमालयम् । रत्नैर्मणिभिः खचिते प्रत्युप्ते सिंहासने आसीनमुपविष्टम् । शमनं यमराजम् । दण्डप्रमाणं दण्डवन्नमस्कारम् । सोऽपि यमराजोऽपि । निजामात्यं स्वमन्त्रिणम् । अमुष्य पुरुषस्य । मृत्युसमयः मरणकालः । निन्दितं गर्हितं चरितं चरित्रं यस्य सः । महीसुरनिमित्तं ब्राह्मणार्थम् । इतः प्रभृति अद्यारभ्य । विगलितं विनष्टं कल्मषं पापं यस्य तस्य । अस्य पुरुषस्य । पुण्यकर्मणां करणेऽनुष्ठाने । रुचिरभिलाषः । उदेष्यति उत्पत्स्यते । पापिष्ठैः पापाचारिभिः अनुभूयमानं भुज्यमानम् । अत्र यमालये नरके वा । यातनाविशेषं पीडाविशेषम् । गम्यतां प्राप्यताम् ।

---

(७) इस बातपर उन किरातोंने मुझे बहुत डाँटा तथा मारे क्रोधके उनकी आँखें लाल-लाल हो गयीं । उनकी कटु भर्त्सनाको मैं न सह सका तथा ब्राह्मणकी रक्षाके निमित्त उनसे लड़कर प्राणोंको त्याग दिया ।

(८) मृत्युके पश्चात् प्रेतपुरीमें गया । वहाँ शरीरधारी पुरुषोंसे परिवेष्टित सभाके मध्यभागमें रत्नादि-जटित सिंहासनपर आसीन यमराजको देखा और दण्ड-प्रणाम किया । उन्होंने भी मुझे देखा और चित्रगुप्त नामके अपने मन्त्रीको बुलाकर कहा—हे चित्रगुप्त मन्त्रिवर ! इसकी मृत्युका समय अभी नहीं है । यद्यपि इसका आचरण कुत्सित है परन्तु यह विप्रके लिए मरा है । अतः उस पुण्यसे आजसे इसकी बुद्धि पापाचरणरहित होकर धर्माचरणवाली होगी । अत एव पापियोंको दी जानेवाली नरक-यातनाको दिखाकर इसे पुनः इसके पहले शरीरमें ही भेज देना चाहिये ।

(९) चित्रगुप्तोऽपि तत्र तत्र संतप्तेष्वायसस्तम्भेषु बध्यमानान् , अत्युष्णीकृते विततशरावे तैले निक्षिप्यमाणान् , लगुडैर्जर्जरीकृतावयवान् , निशितटंकैः परितक्ष्यमाणानपि दर्शयित्वा पुण्यबुद्धिमुपदिश्य माममुञ्चत् । तदेव पूर्वशरीरमहं प्राप्तो ममाटवीमध्ये शीतलोपचारं रचयता महीसुरेण परीक्ष्यमाणः शिलायां शयितः क्षणमतिष्ठम् ।

(१०) तदनु विदितोदन्तो मदीयवंशबन्धुगणः सहसागत्य मन्दिरमानीय मामपक्रान्तव्रणमकरोत् । द्विजन्मा कृतज्ञो मह्यमक्षरशिक्षां विधाय विविधागमतन्त्रमाख्याय कल्मषक्षयकारणं सदाचारमुपदिश्य ज्ञानेक्षणगम्यमानस्य शशिखण्डशेखरस्य पूजाविधानमभिधाय पूजां मत्कृतामङ्गीकृत्य निरगात् ।

---

(९) आयसस्तम्भेषु लौहस्तम्भेषु । विततशरावे विस्तीर्णकटाहे । तत्रस्थे इत्यर्थः । लगुडैर्वंशदण्डैर्यष्टिभिरिति यावत् । जर्जरीकृताः प्रहारेण शिथिलीकृता अवयवा अङ्गानि येषां तान् । निशितटङ्कैस्तीक्ष्णपाषाणदारणैः । परितक्ष्यमाणान् तनूक्रियमाणान् । रचयता कुर्वता । परीक्ष्यमाणः जीवति वा न वेति दृश्यमानः ।

(१०) विदितो ज्ञात उदन्तो वृत्तान्तो येन सः मदीयवंशबन्धुगणः मम ज्ञातिवर्गः । अपक्रान्ताः चिकित्सिता व्रणाः प्रहारस्थानानि यस्य तम् । द्विजन्मा ब्राह्मणः । अक्षरशिक्षां लिपिविज्ञानम् । विविधागमानां नानाशास्त्राणां तन्त्रं सिद्धान्तम् । आख्याय उपदिश्य । कल्मषाणां पापानां क्षये नाशे कारणं निमित्तभूतम् । सतामाचारं—सज्जनैरुपदर्शितं मार्गम् । ज्ञानेक्षणेन ज्ञाननेत्रेण गम्यमानस्य न तु चक्षुषा दृश्यस्येत्यर्थः । शशिखण्डशेखरस्य शिवस्य । पूजाविधानं पूजनविधिम् । अङ्गीकृत्य स्वीकृत्य गृहीत्वेत्यर्थः । निरगात् निर्गतः ।

---

(९) चित्रगुप्त महोदयने भी मुझे ले जाकर निम्नांकित नरकयातनाएँ दिखायीं । वहाँपर मैंने देखा कि अत्र तत्र जीवोंको लोहेके तप्त खम्भोंमें बाँधा जा रहा था । कहीं-कहीं खूब गरम किये तेलके बड़े-बड़े कड़ाहे रखे थे जिनमें जीव फेंके जा रहे थे । यत्र तत्र लाठीके प्रहारोंसे लोगोंके अंग-भंग हो रहे थे । कहीं-कहींपर छेनीसे लोगोंको बेधा जा रहा था । तब उन्होंने और पापियोंको मुझे दिखाया तथा पुण्य-चरित्रका, पुण्य-बुद्धिके उदयार्थ उपदेश किया और मुझे छोड़ दिया । पुनः मैं उस शरीरमें आ गया और देखा कि, वही ब्राह्मण जिसके लिये मैं लड़ा था मेरे मृत शरीरकी शीतोपचारसे रक्षा कर रहा है तथा मेरे शरीरको एक शिलाके ऊपर सुलाये हुए रखे हैं । मैं क्षण भर ऐसी दशामें रहा ।

(१०) अनन्तर मेरे वंशके बन्धु-बान्धवगण भी मेरी ऐसी दशा जानकर यहाँपर अचानक आ पहुँचे तथा मुझे घर ले गये एवं सेवा-शुश्रूषा द्वारा मेरे अंगोंको अच्छा किया । वह ब्राह्मण

(११) तदारभ्याहं किरातकृतसंसर्गं बन्धुवर्गमुत्सृज्य सकललोके गुरुमिन्दुकलावतंसं चेतसि स्मरन्नस्मिन्कानने दूरीकृतकलङ्को वसामि 'देव, भवते विज्ञापनीयं रहस्यं किंचिदस्ति । आगम्यताम्' इति ।

(१२) स वयस्यगणादपनीय रहसि पुनरेनमभाषत—'राजन् , अतीते निशान्ते गौरीपतिः स्वप्नसन्निहितो निद्रामुद्रितलोचनं विबोध्य प्रसन्नवदनकान्तिः प्रश्रयानतं मामवोचत्—'मातङ्ग, दण्डकारण्यान्तरालगामिन्यास्तटिन्यास्तीरभूमौ सिद्धसाध्याराध्यमानस्य स्फटिकलिङ्गस्य पश्चादद्रितिकन्यापदपङ्क्तिचिह्नितस्याश्मनः सविधे विधेराननमिव किमपि बिल

(११) किरातैः कृतः संसर्गः सम्बन्धो येन तमिति बंधुवर्गस्य विशेषणम् उत्सृज्य त्यक्त्वा । सकलस्य लोकस्य संसारस्यैकोऽद्वितीयो गुरुस्तम् । इन्दोः कला अवतंसः शिरोभूषणं यस्य तं शिवमित्यर्थः । दूरीकृतकलङ्को निष्कलङ्को निष्पाप इ यावत् । विज्ञापनीयं कथनीयम् । रहस्यं गोप्यम् ।

(१२) स मातङ्गः । वयस्यगणात् सुहृन्मण्डलाद् अपनीय दूरं नीत्वा । रह निर्जने । एवं राजवाहनम् । अतीते विगते । निशान्ते रात्रिशेषे । स्वप्ने स्वप्नावस्थायां संनिहितः समीपमागतः । निद्रया मुद्रिते निमीलिते लोचने यस्य तम् । विबो जागरयित्वा प्रसन्ना सौम्यमधुरा वदनस्य मुखस्य कान्तिः शोभा यस्य सः । प्रश्र विनयेनानतं नम्रशिरसम् । दण्डकारण्यस्य तदाख्यवनस्य अन्तराले मध्ये गामि गमनशीलायास्तटिन्या नद्याः । सिद्धैः गुह्यक दिभिः साध्यैः गणदेवतावि आराध्यमानस्य उपास्यमानस्य । स्फटिकलिङ्गस्य स्फटिकनिर्मितशिवस्य । अद्रि हिमालयस्य कन्यायाः पार्वत्याः पदपंक्त्या चरणपद्धत्या चिह्नितस्याङ्कितस्य अश्मनः पाषाणस्य । सविधे समीपे । विधेर्ब्रह्मणः । आननं मुखम् । बिलं बि

विप्र मुझे लिपिविज्ञान, नाना शास्त्र, तन्त्रके सिद्धान्त, पापनाशक सदाचार एवं ज्ञानसे भगव शिवकी पूजा-विधिका सदुपदेश देकर तथा मेरे द्वारा दी हुई दक्षिणा आदिको ग्रहण चला गया ।

(११) उसी दिनसे किरातोंके साथ रहनेवाले बान्धवोंको त्यागकर मैं समस्त भुवनोंके मात्र कारण भगवान् शङ्करकी सेवामें दृढ चित्त हो उन्हींको जपता हुआ इस विपिनमें पापोंको छोड़कर रह रहा हूँ । हे देव, आपसे एकान्तमें मुझे कुछ कहना है, अतः आवें और सुनें ।

(१२) सुहृद्-मण्डलसे अलग ले जाकर उसने राजवाहनसे कहा—हे राजन् , गत रा भगवान् शिवने मुझे सोते हुए जगाया तथा कहा—हे मातङ्ग, दण्डकारण्यके मध्यमें बहनेवाली नदीके तीरपर सिद्ध और गणदेवोंसे आराध्यमान स्फटिक-निर्मित शिवलिङ्गके पार्वती देवीकी चरणश्रेणीसे चिह्नित प्रस्तरके समीप ब्रह्माके मुखके सदृश एक विवर

विद्यते । तत्प्रविश्य तत्र निक्षिप्तं ताम्रशासनं शासनं विधातुरिव समादाय विधिं तदुपदिष्टं दिष्टविजयमिव विधाय पाताललोकाधीश्वरेण भवता भवितव्यम् । भवत्साहाय्यकरो राजकुमारोऽद्य श्वो वा समागमिष्यति' इति । तदादेशानुगुणमेव भवदागमनमभूत् । साधनाभिलाषिणो मम तोषिणो रचय साहाय्यम्' इति ।

(१३) 'तथा' इति राजवाहनः साकं मातङ्गेन नमितोत्तमाङ्गेन विहायार्धरात्रे निद्रापरतन्त्रं मित्रगणं वनान्तरमवाप । तदनु तदनुचराः कल्ये साकल्येन राजकुमारमनवलोकयन्तो विषण्णहृदयास्तेषु तेषु वनेषु सम्यगन्विष्यानवेक्षमाणा एतदन्वेषणमनीषया देशान्तरं चरिष्णवोऽतिसहिष्णवो निश्चितपुनःसंकेतस्थानाः परस्परं वियुज्य ययुः ।

छिद्रमिति यावत् । तत् विलम् । निक्षिप्तं स्थापितम् । ताम्रशासनं ताम्रफलकम् । शासनमादेशम् । समादाय गृहीत्वा । तत्र ताम्रशासने उपदिष्टं लिखितम् । दिष्टस्य भाग्यस्य विजयं विजयकारिणम् 'दैवं दिष्टं भागधेयं भाग्यं स्त्री नियतिर्विधिरि'त्यमरः । भवतस्तव साहाय्यकारी । श्वः आगामिदिने । तदादेशानुगुणं तदादेशानुरूपम् । साधनाभिलाषिणः तत्कार्यसिद्धिं कामयतः । तोषिणः सन्तुष्टस्य । रचय कुरु ।

(१३) तथा 'एवमस्तु' इति प्रार्थनां स्वीकृत्येत्यर्थः । नमितोत्तमाङ्गेन नम्रशिरसा । विहाय परित्यज्य । मित्रगणमिति शेषः । अर्धरात्रे निशीथे । निद्रापरतन्त्रं निद्राकुलम् । वनान्तरं अपर वनम् । कल्ये प्रभाते । 'प्रत्यूषोऽहर्मुखं कल्यमि'त्यमरः । साकल्येन सामस्त्येन—सर्वे सर्वत्र अन्विष्यापि इत्यर्थः । विषण्णं खिन्नं हृदयं येषां ते । अनवेक्षमाणाः अपश्यन्तः । एतस्य कुमारस्य अन्वेषणस्यानुसन्धानस्य मनीषया बुद्ध्या । चरिष्णवः भ्रमणशीलाः । अतिसहिष्णवः क्लेशसहनशीलाः । निश्चितं निर्णीतं पुनःसंकेतस्थानं पुनःसंगमस्थानं येस्ते । वियुज्य पृथग्भूय ।

उस विवर (बिल) में प्रविष्ट होकर वहाँ रखे हुए ताम्रपत्रको ब्रह्माके आदेशके समान ले लो और उस ताम्रपत्र में लिखी हुई विधिको सौभाग्यसे प्राप्त विजयकी भाँति स्वीकार करो और तुम पातालाधिपति बन जाओ । इस कार्यमें तुम्हारी सहायता करनेवाला एक राजपुत्र आज कलतक तुम्हारे समीप आ जायगा । भगवान्के आदेशानुसार ही आपका आगमन हुआ है अतः आप अब मेरी सहायता करें ।

(१३) 'मैं सहायता करूँगा' ऐसा कहकर राजवाहन आधी रातके समय निद्राके वशीभूत मित्रवर्गोंको छोड़कर प्रणामार्थं नतमस्तक मातंगके साथ वनान्तरमें चला गया । प्रभात समयमें राजवाहनको खोजनेपर भी उसके सेवकोंने न पाया और वे बड़े दुःखी हुए । इसके पश्चात् वे लोग उसे खोजने अन्य अरण्योंमें गये । देशान्तरमें खोजनेके लिए जानेवाले

(१४) लोकैकवीरेण कुमारेण रक्ष्यमाणः संतुष्टान्तरङ्गो मातङ्गोऽपि बिलं शशिशेखरकथिताभिज्ञानपरिज्ञातं निःशङ्कं प्रविश्य गृहीतताम्रशासनो रसातलं पथा तेनैवोपेत्य तत्र कस्यचित्पत्तनस्य निकटे केलीकाननका सारस्य विततसारसस्य समीपे नानाविधेनेशशासनविधानोपपादितेन हविषा होमं विरच्य प्रत्यूहपरिहारिणि सविस्मयं विलोकयति राजवाहने समिदाज्यसमुज्ज्वलिते ज्वलने पुण्यगेहं देहं मन्त्रपूर्वकमाहुतीकृत्य तडि त्समानकान्ति दिव्यां तनुमलभत ।

(१५) तदनु मणिमयमण्डनमण्डलमण्डिता सकललोकललनाकुल

---

(१४) लोकेषु भुवनेषु एकोऽद्वितीयो वीरो योधस्तेन । सन्तुष्टान्तरङ्गः हृष्टमानसः । शशिशेखरेण शिवेन कथितात् आदिष्टात् अभिज्ञानात् चिह्नात् परिज्ञातमव गतम् । निःशङ्कं निर्भयम् । रसातलं पातालम् । पथा मार्गेण । पत्तनस्य नगरस्य केलीकानने क्रीडोद्याने यत्कासारं सरोवरं तस्य । विततः सर्वतः प्रसृताः सारसाः पक्षिविशेषा यत्र तस्य । ईशस्य शिवस्य यत् शासनविधानं आज्ञाविधिस्तेनोपपादितेन सम्पादितेन । हविषा हवनीयद्रव्येण आज्यादिनेत्यर्थः । प्रत्यूहपरिहारिणि विघ्ननि वारके । समिद्भिः काष्ठैः आज्यैर्घृतैश्च समुज्ज्वलिते उद्दीपिते । ज्वलने वह्नौ पुण्यस्य सुकृतस्य गेहमाधारभूतं देहस्य विशेषणमेतत् । मन्त्रपूर्वकं समन्त्रकम् आहुतीकृत्य ज्वलने क्षिप्त्वा । तडिता विद्युता समाना तुल्या कान्तिः प्रभा यस्य स्ताम् । दिव्यां स्वर्गीयाम् । तनुं देहम् ।

(१५) मणिमयै रत्नप्रचुरैर्मण्डनमण्डलैर्भूषणगणैर्मण्डिताऽलंकृता । सक

उन अतिसहिष्णु कुमारोंने पुनः आकर मिलनेके लिए एक संकेतस्थल भी निश्चित कर दि इसके पश्चात् वे लोग अलग-अलग दिशाओं में खोजने चल पड़े ।

(१४) विश्वके प्रमुख योधा राजवाहन द्वारा रक्षित होने से प्रसन्न चित्त उस मातं भी शिवजीसे निर्देशित किये गये लक्षणोंवाले चिह्नोंसे परिज्ञात विवरमें निःशंक होकर प्र किया और वहाँसे ताम्रपत्रको लेकर फिर उसी मार्गसे पातालमें चला गया । वहाँ किसी न के समीप सारस पक्षियोंसे युक्त क्रीडोद्यानके तालाबके पास परमेश्वरकी आज्ञा-विधिके अ कूल सम्पादित अनेक प्रकारके हवनीय द्रव्यको होम करके विघ्नोंको दूर करनेवाले राजवा के, आश्चर्यपूर्वक, देखते-देखते समिधा एवं घृतसे उद्दीप्त अग्निमें पुण्यगेह-देहकी आहु दी । तथा बिजलीके सदृश देदीप्यमान शरीर प्राप्त किया ।

(१५) इसके पश्चात् रत्नोंके अलंकारोंसे अलंकृत समस्त रमणियोंमें श्रेष्ठ एक कुमा

ललामभूतकन्या काचन विनीतानेकसखीजनानुकम्प्यमाना कलहंसगत्या शनैरागत्यावनिसुरोत्तमाय मणिमेकमुज्ज्वलाकारमुपायनीकृत्य तेन 'का त्वम्' इति पृष्टा सोत्कण्ठाकलकण्ठस्वनेन मन्दं मन्दमुदञ्जलिरभाषत—

(१६) 'भूसुरोत्तम, अहमसुरोत्तमनन्दिनी कालिन्दी नाम। मम पितास्य लोकस्य शासिता महानुभावो निजपराक्रमासहिष्णुना विष्णुना दूरीकृतामरे समरे यमनगरातिथिरकारि। तद्वियोगशोकसागरमग्नां माम-वेक्ष्य कोऽपि कारुणिकः सिद्धतापसोऽभाषत—

(१७) 'बाले, कश्चिद्दिव्यदेहधारी मानवो नवो वल्लभस्तव भूत्वा सकलं रसातलं पालयिष्यति' इति। तदादेशं निशम्य घनशब्दोन्मुखी चा-

---

लोकस्य निखिलसंसारस्य ललनाकुलेषु कामिनीगणेषु ललामभूता भूषणस्वरूपा कन्यका। विनीता नम्रा। अनेकैर्बहुभिः सखीजनैः सहचरीवर्गैरनुगम्यमानाऽनुस्रि-यमाणा। कलहंसगत्या राजहंसवन्मन्थरगमनेन। अवनिसुरोत्तमाय ब्राह्मणवराय मातङ्गायेत्यर्थः। उपायनीकृत्य उपहारीकृत्य। तेन मातङ्गेन। सोत्कण्ठा सोत्सुका। कलकण्ठस्वनेन कोकिलस्वरेण। उदञ्जलिर्बद्धाञ्जलिः।

(१६) लोकस्य पातालस्य। शासिता पालयिता। महानुभावो महाप्रतापः। निजस्य स्वस्य (मत्पितुरित्यर्थः) पराक्रमस्य असहिष्णुना सहनाशक्तेन। दूरीकृताः पराजिता अमरा देवा यस्मिंस्तस्मिन्। यमनगरस्य यमालयस्यातिथिरभ्यागतः। अकारि कृतः हत इत्यर्थः। तस्य पितुर्वियोगो विनाशस्तस्माद्यः शोक एव सागरस्तत्र मग्ना ताम्। कारुणिको दयालुः।

(१७) वल्लभः पतिः। तस्य सिद्धतापसस्यादेशमाज्ञाम्। घनस्य मेघस्य शब्देन गर्जनेन उन्मुखी ऊर्ध्वमुखी। मेघध्वनिं श्रुत्वोर्ध्वाननेत्यर्थः। तदालोकनकाङ्क्षिणी

विनीत सखियोंके साथ कलहंसकी चालसे आकर उक्त देदीप्यमान शरीरधारी ब्राह्मणके समीप जाकर एक समुज्ज्वल मणि उसे भेंट की। ब्राह्मणके द्वारा पूछी जानेपर कि 'तुम कौन हो ?' उसने कोयलसी मीठी वाणीमें धीमें स्वरसे उत्तर दिया—

(१६) हे भूसुरोत्तम ! मेरा नाम कालिन्दी है और मैं असुरराजकी पुत्री हूँ। जब इस लोकके अधिपति मेरे पिताने, इस लोकका शासन करते हुए अपने महापराक्रमके विक्रमसे समरमें देवताओंको भी पराजित कर दिया, तब इस महापराक्रमको न सहकर विष्णु भगवान्‌ने मेरे पिताको संग्राममें मार डाला। उनके वियोगरूपी शोक-सागरमें निमग्न मुझे देखकर जटाधारी एक कारुणिक साधुने मुझसे कहा—

(१७) एक दिव्य देहधारी मानव तुम्हारा वल्लभ होगा जो समस्त पातालका स्वामी भी

तकी वर्षागमनमिव तवालोकनकाङ्क्षिणी चिरमतिष्ठम् । मन्मनोरथफलायमानं भवदागमनमवगम्य मद्राज्यावलम्बभूतामात्यानुमत्या मदनकृतसारथ्येन मनसा भवन्तमागच्छम् । लोकस्यास्य राजलक्ष्मीमङ्गीकृत्य मां तत्सपत्नीं करोतु भवान्' इति ।

(१८) मातङ्गोऽपि राजवाहनानुमत्या तां तरुणीं परिणीय दिव्याङ्गनालाभेन हृष्टतरो रसातलराज्यमुरीकृत्य परमानन्दमाससाद ।

(१९) वञ्चयित्वा वयस्यगणं समागतो राजवाहनस्तदवलोकनकौतूहलेन भुवं गमिष्णुः कालिन्दीदत्तं क्षुत्पिपासादिक्लेशनाशनं मणिं साहाय्यकरणसंतुष्टान्मातङ्गाल्लब्ध्वा कंचनाध्वानमनुवर्तमानं तं विसृज्य विलप-

---

त्वद्दर्शनाभिलाषिणी । चिरं दीर्घकालम् । मम मनोरथोऽभिलाषस्तस्य फलं तद्वदाचरतीति । मम राज्यस्य लोकस्य पातालस्येत्यर्थः । अवलम्बभूतानां रक्षकाणां अमात्यानां मन्त्रिणामनुमत्या सम्मत्या । मदनेन कामेन कृतं सारथ्यं सारथिकर्म यस्य तेन मदनचालितेनेत्यर्थः । तस्या राजलक्ष्म्याः सपत्नीं प्रतिपक्षवनिताम् ।

(१८) राजवाहनानुमत्या राजकुमारादेशेन । परिणीयोद्वाह्य । हृष्टतरोऽतिशयेन हृष्टः । उररीकृत्य स्वीकृत्य तद्राज्याधिपतिर्भूत्वेत्यर्थः । आससाद प्राप ।

(१९) वञ्चयित्वा विप्रलभ्य । वयस्यगणं मित्रमण्डलम् । तदवलोकनकौतूहलेन तेषां सुहृदां अवलोकनकौतूहलेन दर्शनकौतुकेन । भुवं पृथिवीम् । गमिष्णुः गमनशीलोऽर्थात्पातालात् । कालिन्द्या मातङ्गपत्न्या दत्तमर्पितम् । क्षुत्पिपासेति—यस्य प्रभावात् क्षुत्पिपासादयो नश्यन्तीत्यर्थः । मणिं रत्नम् । साहाय्यकरणसन्तुष्टात् साहाय्य-

---

होगा ।' उसी आदेशको शिरोधार्य करके मैं, मेघागमके लिए जैसे चातकी प्रतीक्षा किये रहती है तद्वत्, आपकी आशामें प्रतीक्षा किए बहुत दिनोंसे बैठी हूँ । मेरी अभिलाषाके फलस्वरूप आपके आगमनको जानकर मेरे राज्यके आलम्बनभूत अमात्योंकी अनुमतिसे कामदेवको सारथी बनाकर मेरा मन आपके समीप आया है—कामोन्मत्ता मैं आप तक आयी हूँ । अतः आप इस राज्यश्रीसहित राज्यपालनको अङ्गीकार करें और मुझे भी राज्यश्रीकी सपत्नी (सौत) बनावें ।

(१८) राजवाहनकी अनुमतिसे मातंगने भी उस युवतीसे विवाह किया । तथा दिव्यांगनाकी प्राप्तिपर अति प्रसन्न होकर पातालके शासनकी प्राप्तिसे परमानन्दित हो गया ।

(१९) अपने मित्रोंको वनमें छोड़कर राजवाहन आया था । अतः मित्रोंको देखनेकी अभिलाषासे जब वह पृथिवीपर आने लगा तब भूख और प्यासको दूर करनेवाली एक मणि जो उसे कालिन्दीने दी और सहायता करनेसे सन्तुष्ट मातंगसे लेकर पहुँचाने आया । कुछ दूर तक

येन तेन निर्ययौ । तत्र च मित्रगणमनवलोक्य भुवं बभ्राम ।

(२०) भ्रमंश्च विशालोपशल्ये कमप्याक्रीडमासाद्य तत्र विशश्रमिषुरान्दोलिकारूढं रमणीसहितमाप्तजनपरिवृतमुद्याने समागतमेकं पुरुषमपश्यत् । सोऽपि परमानन्देन पल्लवितचेता विकसितवदनारविन्दः 'मम स्वामी सोमकुलावतंसो विशुद्धयशोनिधी राजवाहन एषः । महाभाग्यतयाकाण्ड एवास्य पादमूलं गतवानस्मि । संप्रतिमहान्नयनोत्सवो जातः' इति ससंभ्रममान्दोलिकाया अवतीर्य सरभसपदविन्यासविलासिहर्षोत्कर्षचरितस्त्रिचतुरपदान्युद्गतस्य चरणकमलयुगलं गलदुल्लसन्मल्लिकावलयेन मौलिना पस्पर्श ।

विधानपरितुष्टात् । कश्चन कियन्तम् । अनुवर्तमानमनुसरन्तम् ।

(२०) विशाले महति उपशल्ये ग्रामप्रान्तभागे । आक्रीडमुद्यानम् । विशश्रमिषुः विश्रमितुमिच्छुः । आन्दोलिकायां दोलायामारूढमुपविष्टम् । आप्तजनैरात्मीयैः परिवृतं परिवेष्टितम् । सोऽपि आन्दोलिकारूढः पुरुषोऽपि । पल्लवितं विकसितं चेतो हृदयं यस्य सः प्रसन्नहृदय इत्यर्थः । विकसितवदनारविन्दः प्रफुल्लमुखकमलः । स्वामी प्रभुः । सोमकुलावतंसः चन्द्रवंशभूषणम् । विशुद्धयशोनिधिर्विमलकीर्तिशेवधिः । महद्भाग्यं यस्य तस्य भावस्तया अनुकूलदैवप्रभावेण । अकाण्डे असमये सहसेत्यर्थः । पादमूलं चरणसमीपम् । नयनोत्सवो नेत्रानन्दः । ससम्भ्रमं सत्वरादरम् । सरभसेन वेगवता पदविन्यासेन चरणनिःक्षेपेण विलसतीति विलासी तथाभूतश्चासौ हर्षोत्कर्षो चरिते यस्य स चेति कर्मधारयः । त्रीणि चत्वारि वेति त्रिचतुराणि उद्गतस्य चलितस्य । गलद् अवनमनेन च्यवद् उल्लसन्मल्लिकावलयं विकसन्मल्लिकामाल्यं यस्मात्तेन । मौलिना शीर्षेण । पस्पर्श चरणयुगलमिति शेषः, नमश्चकारेत्यर्थः ।

आनेपर राजवाहनने उसे बीचमेंमें ही छोड़ दिया तथा स्वयं विवरके द्वारसे बाहर आ गया । जहाँसे मित्रवर्गको वंचित करके वह पाताल गया था उस स्थलपर आनेपर उसने उन लोगोंको वहाँ न पाया । उन्हें न पाकर उनकी खोजमें वह पृथिवीतलपर इतस्ततः घूमने लगा ।

(२०) घूमते हुए वह एक दिन विशालापुरीके समीप एक बागमें आया । वहाँ विश्राम करनेकी चेष्टा करने लगा । इतनेमें पालकीमें बैठे हुए रमणीके साथ तथा आप्तजनोंसे परिवृत होकर आये हुए एक मनुष्यको उसने देखा । परमानन्द हर्षोल्लाससे मुदित मन एवं प्रफुल्लित मुखवाले उस पुरुषने कहा—'अरे ये तो चन्द्रवंशके भूषण स्वच्छ सुयशके निधान मेरे स्वामी राजवाहन हैं । बड़े भाग्योदयसे आज अनायास इनके दर्शन मिले । अब इनके चरण-कमलोंको छूना चाहिये । इस समय नेत्रोंको बड़ा सुख हो रहा है ।' ऐसा कहते हुए हर्षके साथ अति शीघ्र पालकीसे उतरकर बड़े वेगसे विलासके साथ पैरोंको भूमिपर रखते हुए [illegible] राजवाहनके

(२१) प्रमोदाश्रुपूर्णो राजा पुलकिताङ्गं तं गाढमालिङ्ग्य 'अये सौम्य सोमदत्त !' इति व्याजहार। ततः कस्यापि पुन्नागभूरुहस्य छायाशीतले तले संविष्टेन मनुजनाथेन सप्रणयमभाणि—'सखे ! कालमेतावन्तं, देशे कस्मिन् , प्रकारेण केनास्थायि भवता, संप्रति कुत्र गन्त्यते, तरुणी केयम् , एष परिजनः संपादितः कथम् , कथय' इति।

(२२) सोऽपि मित्रसंदर्शनव्यतिकरापगतचिन्ताज्वरातिशयो मुकुलितकरकमलः सविनयमात्मीयप्रचारप्रकारमवोचत्—

इति श्रीदण्डिनः कृतौ दशकुमारचरिते द्विजोपकृतिर्नाम द्वितीय उच्छ्वासः॥

---

(२१) प्रमोदाश्रुभिः सुहृदवलोकनानन्दजनितनेत्रवारिभिः पूर्णः। पुलकिताङ्गं रोमाञ्चितशरीरम्। सौम्य सुन्दर मनोहरेति यावत्। व्याजहार उवाच। पुन्नागभूरुहस्य नागकेसरवृक्षस्य। संविष्टेनोपविष्टेन। मनुजनाथेन राज्ञा। सम्पादितः प्राप्तः।

(२२) सोऽपि सोमदत्तोऽपि। मित्रस्य सुहृदः सन्दर्शनव्यतिकरेण अवलोकनव्यापारेण अवगतो विनष्टः चिन्ताज्वरातिशयो यस्य सः। मुकुलितकरकमलः बद्धाञ्जलिः। आत्मीयप्रचारप्रकारं निजभ्रमणवृत्तान्तम्।

इति श्रीताराचरणभट्टाचार्यकृतायां बालविबोधिनीसमाख्यायां
दशकुमारचरितव्याख्यायां द्वितीयोच्छ्वासः।

पैरोंका अपने शिरसे स्पर्श किया। चरणोंके स्पर्शके समय उसके शिरसे मल्लिकाकी मालाएँ गिरी पड़ रही थीं।

(२१) आनन्दाश्रुसे परिपूर्ण राजवाहनने आनन्दविभोर होकर उस पुलकितांग पुरुषका गाढालिंगन छातीसे लगाकर किया और कहा—'अये सौम्य सोमदत्त।' तब एक पुंनाग (नागकेसर) वृक्षकी शीतल छायामें बैठकर राजवाहनने कहा—हे सखे! इतने समय किस देशमें रहे तथा क्या करते रहे? अधुना कहाँ जाते हो! यह तरुणी भी कौन है? इन सब परिजनोंसे कैसे भेंट हुई? सभी बातें समझाओ।

(२२) यह सुनकर सोमदत्त भी बड़ा प्रसन्न हुआ तथा मित्रसमागमसे उत्पन्न हर्षके द्वारा चिन्तायुक्त ज्वरसे रहित होकर अपने करकमलोंकी अञ्जलि बाँधकर विनयसे बतलाने लगा।

इस प्रकारसे द्वितीय उच्छ्वासकी बालक्रीडा हिन्दी टीका समाप्त हुई।

तृतीयोच्छ्वासः

(१) 'देव, भवच्चरणकमलसेवाभिलाषीभूतोऽहं भ्रमन्नेकस्यां वनावनौ पिपासाकुलो लतापरिवृतं शीतलं नदसलिलं पिबन्नुज्ज्वलाकारं रत्नं तत्रैकमद्राक्षम्। तदादाय गत्वा कंचनाध्वानमम्बरमणेरत्युष्णतया गन्तुमक्षमो वनेऽस्मिन्नेव किमपि देवतायतनं प्रविष्टो दीनाननं बहुतनयसमेतं स्थविरंमहीसुरमेकमवलोक्य कुशलमुदितदयोऽहमपृच्छम्।

(२) कार्पण्यविवर्णवदनो महदाशापूर्णमानसोऽवोचदग्रजन्मा—'महाभाग, सुतानेतान्मातृहीनाननेकैरुपायैः रक्षन्निदानीमस्मिन्कुदेशे भैक्ष्यं संपाद्य ददद्देतेभ्यो वसामि शिवालयेऽस्मिन्' इति।

---

(१) सोमदत्तः कथयति देवेति—भवतस्तव चरणकमलयोः पादपद्मयोः सेवायां शुश्रूषायां अभिलाषीभूतः साभिलाषः। वनावनौ काननप्रदेशे। तत्र नदसलिले। कञ्चन कियन्तम्। अम्बरमणेः सूर्यस्य। देवतायतनं देवमन्दिरम्। दीनं विवर्णं आननं मुखं यस्य तम्। बहुभिरनेकैस्तनयैः पुत्रैः समेतं युक्तम्। स्थविरमहीसुरं वृद्धब्राह्मणम्। कुशलं क्षेमम् अपृच्छमित्यस्य कर्म। उदितोत्पन्ना दया करुणा यस्य सः। अहं सोमदत्त इत्यर्थः।

(२) कार्पण्येन दैन्येन विवर्णं मलिनं वदनं मुखं यस्य सः। महत्या प्रचुरया आशया आकाङ्क्षया उपस्थितोऽयं मह्यं किञ्चिदवश्यं प्रदास्यतीत्येवंरूपया पूर्णं मानसं यस्य सः। अग्रजन्मा ब्राह्मणः। इदानीं सम्प्रति। कुदेशे निकृष्टस्थाने। भैक्ष्यं भिक्षाचरणम्। एतेभ्यः सुतेभ्यः।

सोमदत्तचरित

(१) हे देव! आपके पादपद्मोंका सेवाभिलाषी मैं पर्यटन करता हुआ एक दिन एक वनमें पहुँचा। वहाँ प्याससे आकुलीभूत होकर लताओंसे आच्छादित नदीके जलको पीकर पर्यटन करने लगा। उसी विपिन स्थलमें एक समुज्ज्वल रत्नको पड़ा हुआ मैंने देखा और उसे उठा लिया। कुछ दूर आगे बढ़ा तो सूर्य भगवान्के प्रचण्ड तेज आतपको न सह सका और चलनेमें अशक्त होकर उसी विपिनके एक देव-मन्दिरमें घुस गया। वहाँपर दीन मुखवाले बहुतसे पुत्रोंके साथ बैठे हुए एक वृद्ध ब्राह्मण—पिताको देखा। मुझे उनपर दया आ गयी। मैंने उन वृद्धसे कुशल प्रश्न किये।

(२) दीनताके कारण विवर्णमुख तथा विशाल आशाओंसे परिपूर्ण चित्त होकर उन वृद्ध विप्रने उत्तर दिया—हे महाभाग! मातृहीन इन पुत्रोंका पालन अनेक प्रकारके यत्नों द्वारा इस कुदेशमें भिक्षाटन करके करता हुआ इसी शिवालयमें रहता हूँ।

(३) 'भूदेव, एतत्कटकाधिपती राजा कस्य देशस्य, किं नामधेयः, किमत्रागमनकारणमस्य' इति पृष्टोऽभाषत महीसुरः—'सौम्य, मत्तकालो नाम लाटेश्वरो देशस्यास्य पालयितुर्वीरकेतोस्तनयां वामलोचनां नाम तरुणीरत्नमसमानलावण्यं श्रावं श्रावमवधूतदुहितृप्रार्थनस्य तस्य नगरीमरौत्सीत् । वीरकेतुरपि भीतो महदुपायनमिव तनयां मत्तकालायादात् । तरुणीलाभहृष्टचेता लाटपतिः 'परिणेया निजपुर एव' इति निश्चित्य गच्छन्निजदेशं प्रति संप्रति मृगयादरेणात्र वने सैन्यावासमकारयत् ।

(४) कन्यासारेण नियुक्तो मानपालो नाम वीरकेतुमन्त्री मानधनश्चतुरङ्गबलसमन्वितोऽन्यत्र रचितशिबिरस्तं निजनाथावमानखिन्नमान-

---

(३) एतस्य पुरतो वर्तमानस्य कटकस्य सैन्यस्याधिपतिः स्वामी । किन्नामधेयः किमाख्यकः किं नामधेयं यस्येति विग्रहः । महीसुरो भूसुरः । लाटेश्वरः लाटदेशाधिपतिः । असमानं अद्वितीयं लावण्यं सौन्दर्यं यस्य तत् । श्रावं श्राव पुनः पुनः श्रुत्वा । अवधूता तिरस्कृता न स्वीकृतेति यावत्, दुहितुः कन्याया वामलोचनाया इति यावत् प्रार्थना लाटेश्वरकृता याच्ञा येन तस्य । तस्य वीरकेतोः । अरौत्सीत् रुद्धवान् । उपायनमुपढौकनम् । अदात् प्रददौ । तरुण्याः कन्याया लाभेन प्राप्त्या हृष्टं सन्तुष्टं चेतश्चित्तं यस्य सः । परिणेया विवाह्या । निजपुरे स्वनगरे । मृगयादरेण मृगयाभिलाषेण ।

(४) कन्यैव सारो धनं यस्य तेन वीरकेतुनेत्यर्थः । नियुक्तः प्रेरितः । मान एव धनं यस्य सः अभिमानीत्यर्थः । चतुरङ्गं हस्त्यश्वरथपदातिरूप बलं सैन्यं तेन

---

(३) मैंने पूछा—हे विप्रवर ! इस सेनाका राजा कौन है और उसका क्या नाम है ? और यह राजा सेनासहित क्यों इस स्थान पर आया है ? ऐसा पूछनेपर उत्तर देते हुए उसने कहा—हे सौम्य ! लाट देशके स्वामी मत्तकालने इस देशके अधिपति वीरकेतुकी तनया, जो अपनी सुन्दरतामें अद्वितीया है तथा नारियोंमें मणिके समान है, के साथ विवाह करने की अभिलाषा प्रकट की परन्तु, वीरकेतुने उसकी इच्छाको विफल कर दिया—वामलोचना कन्या देनेसे इनकार कर दिया । तब क्रोध करके मत्तकालने इसका राज्य घेर लिया । इस पर वीरकेतु अतिभयान्वित हो गया और विशाल भेंटमें अपनी पुत्री वामलोचना उसे समर्पित कर दी । उक्त तरुणीकी प्राप्तिपर प्रसन्नचित्त मत्तकालने यह विचार किया कि इसके साथ विवाह संस्कार अपने राज्यमें जाकर कर लेंगे—और वह वहाँसे चल पड़ा । अपने राज्यको जाते हुए शिकार खेलनेकी इच्छासे उसने मार्गमें पड़ाव डाल दिया ।

(४) इधर वीरकेतुके आदेशसे मानपाल नामक मन्त्रीने भी चतुरंगिणी सेनाके साथ

सोऽन्तर्विभेद' इति ।

(५) विप्रोऽसौ बहुतनयो विद्वान्निर्धनः स्थविरश्च दानयोग्य इति तस्मै करुणापूर्णमना रत्नमदाम् । परमाह्लादविकसिताननोऽभिहितानेकाशीः कुत्रचिदग्रजन्मा जगाम । अध्वश्रमखिन्नेन मया तत्र निरवेशि निद्रासुखम् । तदनु पश्चान्निगडितबाहुयुगलः स भूसुरः कशाघातचिह्नितगात्रोऽनेकनैस्त्रिंशिकानुयातोऽभ्येत्य माम् 'असौ दस्युः' इत्यदर्शयत् ।

(६) परित्यक्तभूसुरा राजभटा रत्नावाप्तिप्रकारं मदुक्तमनाकर्ण्य भयरहितं मां गाढं नियम्य रज्जुभिरानीय कारागारम् 'एते तव सखायः'

समन्वितो युक्तः । रचितशिविरः कृतसैन्यावासः । तं मत्तकालम् । निजनाथस्य स्वस्वामिनोऽवमानेन परिभवेन खिन्नं विषण्णं मानसं मनो यस्य सः । अन्तर्विभेद प्रकृत्यमात्यादीनां भेदं चकार ।

(५) दानयोग्यो दानपात्रम् । करुणापूर्णमनाः सदयचित्तोऽहं सोमदत्त इत्यर्थः । परमेणोत्कृष्टेनाह्लादेनानन्देन विकसितं प्रफुल्लमाननं मुखं यस्य सः । अभिहिता उक्ता दत्ता इति यावत् । अनेका असंख्येया आशिष आशीर्वादा येन सः । कुत्रचिदनिर्दिष्टे स्थाने । अग्रजन्मा ब्राह्मणः । अध्वनि मार्गे यः श्रमः परिश्रमस्तेन खिन्नः तेन । निरवेशि उपभुक्तम् । तदनु तदनन्तरम् । पश्चात् पृष्ठदेशे निगडितं बद्धं बाहुयुगलं हस्तद्वयं यस्य सः । कशाघातेन वेत्रप्रहारेण चिह्नितं गात्रं शरीरं यस्य सः । अनेकैर्बहुभिर्नैस्त्रिंशिकैरसिधारिपुरुषैरनुयातोऽनुसृतः । दस्युश्चौरः ।

(६) परित्यक्तो मुक्तो भूसुरो ब्राह्मणो यैस्ते । रत्नावाप्तिप्रकारं मम रत्नलाभवृत्तान्तम् । भयरहितं निर्भयम् । गाढं नियम्य दृढं बद्ध्वा । एते कारागारस्थिताः

प [ड]ाल रखा है और अपने स्वामीके अनादरसे खिन्नचित्त होकर उनमें बुद्धिभेद करा दिया है ।

(५) इस वृत्तान्तको श्रवणकर मैंने सोचा कि यह ब्राह्मण विद्वान् है और निर्धन तथा बहुकुटुम्बी भी है अतः दानके देने योग्य है—ऐसा सोचकर मैंने वह रत्न दयावश उसे दानमें दे दिया । रत्नकी प्राप्तिपर उसे बड़ा हर्ष हुआ और वह अनेक आशीर्वाद देता हुआ वहाँसे चला गया । अध्वपरिश्रमसे क्लान्त होकर मैं भी वहीं सो गया । थोड़ी देरमें वह ब्राह्मण दोनों हाथ निगडित होकर कई सिपाहियोंके साथ मेरे पास आया । मैंने देखा कि उसके शरीरपर चाबुकोंकी मारके निशान भी पड़े हैं । मुझे संकेत कर उसने कहा—यही चोर हैं ।

(६) उन राजपुरुषोंने इस बातको श्रवणकर उस ब्राह्मणको छोड़ दिया और मुझे रस्सियोंसे कसकर बाँध दिया । रत्नप्राप्तिका सारा वृत्तान्त मैंने उनसे कह सुनाया । परन्तु

इति निगडितान्कांश्चिन्निर्दिष्टवन्तो मामपि निगडितचरणयुगलमकार्षुः। किङ्कर्तव्यतामूढेन निराशक्लेशानुभवेनावाचि मया—'ननु पुरुष वीर्यपरुषाः, निमित्तेन केन निविशथ कारावासदुःखदुस्तरम्। यूयं वयस्या इति निर्दिष्टमेतैः. किमिदम्' इति।

(७) तथाविधं मामवेक्ष्य भूसुरान्मया श्रुतं लाटपतिवृत्तान्तं व्याख्याय चोरवीराः पुनरवोचन्—'महाभाग! वीरकेतुमन्त्रिणो मानपालस्य-किङ्करा वयम्। तदाज्ञया लाटेश्वरमारणाय रात्रौ सुरङ्गद्वारेण तदागारं प्रविश्य तत्र राजाभावेन विषण्णा बहुधनमाहृत्य महाटवीं प्राविशाम। अपरेद्युश्च पदान्वेषिणोराजानुचरा बहवोऽभ्येत्य धृतधनचयानस्मान्परितः

इत्यर्थः। सखायः सुहृदः। निगडितान् संयमितान् शृङ्खलाबद्धान् इति यावद्। निर्दिष्टवन्तो दर्शयन्तः। निगडितं बद्धं चरणयुगलं पादद्वयं यस्य तम्। किं कर्तव्यं यस्य तस्य भावः किंकर्त्तव्यता तस्यां मूढो मन्दस्तेन, अधुना किं कार्यमित्यजानतेत्यर्थः। निर्नास्ति आशा यस्य तस्य यः क्लेशः खेदस्तस्यानुभवो यस्मिन् तथाभूतेन। नन्विति सम्बोधने। वीर्येण पराक्रमेण परुषाः कठोराः। निविशथ अनुभवथ। दुस्तरमपारम्। वयस्याः सुहृदः। निर्दिष्टं कथितम्। एतै राजभटैः।

(७) तथाविधं तथाकारं निगडितचरणमित्यर्थः। व्याख्याय मम पुरत उक्त्वा। किंकराः सेवकाः। तदाज्ञया वीरकेतोरादेशेन। सुरङ्गद्वारेण बिलमार्गेण। तदागारं तस्य लाटपतेरागारस्, गृहम्। राजाभावेन राज्ञोऽनुपस्थित्या। विषण्णाः दुःखिताः। आहृत्यादाय। अपरेद्युः अन्यस्मिन् दिने तत्परदिवस इत्यर्थः। पदान्वेषिण चरणचिह्नमनुसरन्तः। अभ्येत्य अस्मत्समीपमागत्य। धृतो रक्षितो धनानां रत्नानां चयो

उन्होंने मेरे कथनपर कुछ भी ध्यान नहीं दिया और कारागारमें लाकर मुझसे कहा—'देखो ये सब तुम्हारे मित्र हैं' तथा जो चोर वहाँ पूर्वसे कैद थे उनको दिखाकर मुझे भी—मेरे दोनों पैरोंको निगडित कर दिया। किंकर्तव्यविमूढ़ होकर तथा उस कारागारसे मुक्तिका कोई अन्य उपाय न देखकर मैंने उन बन्दियोंसे कहा—'ऐ वीरो! तुम लोग इतने बलिष्ठ होकर क्यों इस कारावासके कठिन दुःखोंको झेल रहे हो और इन राजपुरुषोंने. तुम लोगोंको निर्देशित करके मुझे निगडित दशामें देखकर और मेरे द्वारा विप्रके मुखसे सुने हुए लाटपतिके वृत्तान्तको सुनकर वे चोर बोले—'हे सौम्य! राजा वीरकेतुके मंत्री मानपालके हम लोग दास हैं। उन्हीं मंत्रीकी आज्ञासे हम लोग राजाको मारनेके लिए सुरंगके द्वारा रातमें राजाके आगारमें गये। परन्तु, राजाको न पाकर खिन्न मन होकर, वहाँकी अतुल धन

परिवृत्य दृढतरं बद्ध्वा निकटमानीय समस्तवस्तुशोधनवेलायामेकस्यानर्घ्यरत्नस्याभावेनास्मद्वधाय माणिक्यादानादस्मान्किलाशृङ्खलयन्' इति ।

(८) श्रुतरत्नरत्नावलोकनस्थानोऽहम् 'इदं तदेव माणिक्यम्' इति निश्चित्य भूदेवदाननिमित्तां दुरवस्थामात्मनो जन्म नामधेयं युष्मदन्वेषणपर्यटनप्रकारं चाभाष्य समयोचितैः संलापैर्मैत्रीमकार्षम् । ततोऽर्धरात्रे तेषां मम च शृङ्खलाबन्धनं निर्भिद्य तैरनुगम्यमानो निद्रितस्य द्वाःस्थगणस्यायुधजालमादाय पुररक्षान्पुरतोऽभिमुखागतान्पटुपराक्रमलीलयाभि-

---

राधियैस्तान् । परितः समन्तात् परिवृत्य संवेष्ट्य । समस्तवस्तूनां सकलपदार्थानां शोधनवेलायां परीक्षणसमये अन्वेषणकाले इति यावत् । अनर्घ्यरत्नस्य महामूल्यमाणिक्यस्य । अभावेन अप्राप्त्या । माणिक्यादानात्–माणिक्यस्य दानं यावत् । तन्माणिक्यं यावन्न प्रत्यर्पयिष्यामस्तावत्कालपर्यन्तम् । अशृङ्खलयन् शृङ्खलितानकुर्वन् ।

(८) श्रुतमधिगतं रत्नस्य माणिक्यस्य तदवलोकनस्य च स्थानं येन सः । इदं–यन्मया भूसुराय दत्तमित्यर्थः । तदेव–लाटेश्वरगृहात् । चौरैरपहृतम् । भूदेवाय ब्राह्मणाय दानं निमित्तं कारणं यस्यास्ताम् विप्रार्पणसमुद्भूतामित्यर्थः । दुरवस्थां दुर्दशाम् । युष्माकं भवतां राजवाहनादीनामित्यर्थः अन्वेषणाय पर्यटनस्य भूभ्रमणस्य प्रकारं स्वरूपं प्रणालीमिति शेषः । समयोचितैस्तत्कालयोग्यैः । संलापैरालापैः । तेषां चोरवीराणाम् । निर्भिद्य भङ्क्त्वा । द्वारि तिष्ठन्ति ये ते द्वाःस्था दौवारिकाः तेषां गणः समूहस्तस्य । आयुधजालं शस्त्रसमूहम् । पुररक्षान् नगररक्षणे नियुक्तान् । पुरतः अग्रतः । अभिमुखागतान् अस्मात्संमुखमागतान् । पटुः समर्था या पराक्रमलीला

सम्पत्ति लेकर एक महावनमें चले गये । दूसरे दिन पैरोंके चिह्नसे अन्वेषण करनेवाले राजपुरुष उस महावनमें आकर और दृढतासे हम लोगोंको बन्दी बनाकर धनके सहित यहाँपर राजाके समीप ले आये । जब चोरी गयी मणियों–वस्तुओं आदिके निरीक्षणके समय एक रत्न न मिला । वह रत्न अति मूल्यवान था । इसपर हम लोगोंके वधकी आज्ञा हुई और बाँधकर कैदमें डाल दिया गया–जबतक वे लोग विचार न कर लें तबतक कैद रहेंगे फिर प्राणदण्ड होगा ।'

(८) विप्रदेवको दान देनेके कारण ऐसी मेरी दुर्दशा हुई । मैं अपने सुहृदको खोजनेमें इस तरह वन–उपवन घूम रहा हूँ और इस दुर्गतिको प्राप्त हुआ । अस्तु, उन चोरोंने अपना नाम, वंश आदिको बतलाकर मित्रता कर ली और आधी रातमें सामयिक वार्तालाप आदि योग्य बातोंके पश्चात् उन चोरोंकी मैंने तथा अपनी उन चोरों द्वारा बेड़ियाँ तुड़वा डालीं । और सभी लोग एक साथ बाहर आ गये । सोते हुए द्वारपालोंके शस्त्रोंको ले लिया । मार्गमें जाते हुए कुछ नगर-रक्षक सामने मिले उन्हें अपने पराक्रमसे परास्त कर हम लोग

द्राव्यमानपालशिबिरं प्राविशम् । मानपालो निजकिङ्करेभ्यो मम कुलाभिमानवृत्तान्तं तत्कालीनं विक्रमं च निशम्य मामार्चयत् ।

(९) परेद्युर्मत्तकालेन प्रेषिताः केचन पुरुषा मानपालमुपेत्य 'मन्त्रिन्, मदीयराजमन्दिरे सुरुङ्गया बहुधनमपहृत्य चोरवीरा भवदीयं कटकं प्राविशन्, तानर्पय । नो चेन्महाननर्थः भविष्यति' इति क्रूरतरं वाक्यमब्रुवन् । तदाकर्ण्य रोषारुणिततनेत्रो मन्त्री 'लाटपतिः कः, तेन मैत्री का, पुनरस्य वराकस्य सेवया किं लभ्यम्' इति तान्निरभर्त्संयत् । ते च मानपालेनोक्तं विप्रलापं मत्तकालाय तथैवाकथयन् । कुपितोऽपि लाटपतिर्दोर्वीर्यगर्वेणाल्पसैनिकसमेतो योद्धुमभ्यगात् । पूर्वमेव कृतरणनिश्चयो मानी मानपालः संनद्धयोधो युद्धकामो भूत्वा निःशंकं निरगात् । अहमपि सबहु-

---

तया । निजपराक्रमेणेत्यर्थः । अभिद्राव्य दूरमपवाह्य प्रपलाय्येति यावत् । तत्कालीनं तस्मिन् काले कारागृहान्निर्गमनसमये भवं जातम् । आर्चयत् सत्कृतवान् ।

(९) परेद्युः तत्परदिने । कटकं सैन्यमण्डलम् । अनर्थः अहितम् । रोषेण क्रोधेन अरुणिते रक्ते नेत्रे नयने यस्य सः । तेन सहेति शेषः । वराकस्य निकृष्टस्य । निरभर्त्संयत् अतर्जयत् । विप्रलापं विकृतवचनम् । तथैव यथाश्रुतं तथैव । दोर्वीर्यस्य भुजविक्रमस्य गर्वेणाहङ्कारेण पूर्वमेव प्रागेव कृतो रणस्य युद्धस्य निश्चयो निर्णयो येन सः । युद्धमवश्यम्भावीति प्रागेव निर्द्धारितमित्यर्थः । संनद्धा युद्धाय सज्जिता योधा भटा यस्य सः । सबहुमानं सादरं क्रियाविशेषणमेतम् । बहुलैरसंख्यैः

मानपालके शिविरमें आ पहुँचे । मानपालने अपने भृत्यों द्वारा मेरे कुल तथा मेरी कीर्ति और वीरगाथाकी प्रसिद्धि तथा उस समयके किये पराक्रमको मुग्धतापूर्वक सुना और हम लोगोंका अति आदर-सत्कार किया ।

(९) तदनन्तर दूसरे दिन मत्तकाल द्वारा प्रेषित सेवकोंने मानपाल मन्त्रीके समीप आकर कहा—'हे मन्त्रिन् ! मेरे राज-मन्दिरमें सुरंग द्वारा प्रविष्ट होकर बहुत माल—असबाब लेकर चोरवीरोंने तुम्हारे शिविरमें प्रवेश किया है उन्हें तुम मुझे सौंप दो अन्यथा महान् अनर्थ होगा ।' ऐसे कटु वाक्योंको सुनकर क्रोधसे रक्तवर्ण आँखें किये हुए मानपालने कहा—'अरे, कौन लाटपति, मैंने उससे मित्रता कब की ? उस अधमकी दासतासे मुझे क्या लाभ ? उपर्युक्तरीत्या राजपुरुषोंकी खूब भर्त्सना मानपालने की । उन राजसेवकोंने मत्तकालसे आकर ज्योंकी त्यों सभी बातें कह दीं । यह सुनकर लाटपति अपने भुजबलके अखर्व गर्वसे क्रोधान्ध हो गया । अपने साथ थोड़ा-सा सैन्य लेकर मानपालसे युद्ध करने चला आया । पहलेसे ही युद्धके लिए उत्सुक मानी मानपाल भी निःशंक होकर युद्धार्थ शिविरसे निकल पड़ा । मैं भी

मानं मन्त्रिदत्तानि बहुलतुरंगमोपेतं चतुरसारथिं रथं च दृढतरं कवचं-मदनुरूपं चापं च विविधबाणपूर्णं तूणीरद्वयं रणसमुचितान्यायुधानि गृहीत्वा युद्धसंनद्धो मदीयबलविश्वासेन रिपूद्धरणोद्युक्तं मन्त्रिणमन्वगाम् । परस्परमत्सरेण तुमुलसंगरकरमुभयसैन्यमतिक्रम्य समुल्लसद्भुजाटोपेन बाणवर्षं तदङ्गे विमुञ्चन्नरातीन्प्राहरम् ।

(१०) ततोऽतिरयतुरंगमं मद्रथं तन्निकटं नीत्वा शीघ्रलङ्घनोपेततदीयरथोऽहमरातेः शिरःकर्तनमकार्षम् । तस्मिन्पतिते तदवशिष्टसैनिकेषु पलायितेषु नानाविधहयगजादिवस्तुजातमादाय परमानन्दसंभृतो मन्त्री

तुरङ्गमैरश्वैरुपेतं युक्तम् । चतुरो दक्षः सारथिर्यस्य तम् । रथमित्यस्य विशेषणम्, कवचं वर्म्म तूणीरद्वयं इषुधियुग्मम् । रणसमुचितानि युद्धयोग्यानि । मदीयबलस्य विश्वासेन सकलरिपुसैन्यविनाशे सर्वथा समर्थोऽहमिति निर्णीयेत्यर्थः । रिपूणां शत्रूणामुद्धरणे समुच्छेदे उद्युक्तं प्रवृत्तम् । मन्त्रिणं मानपालम् । परस्परमत्सरेण अन्योन्यद्वेषेण । तुमुलसंगरकरं संकुलयुद्धकारि अतिक्रम्य लङ्घयित्वा । समुल्लसतोः भ्राजमानयोः बाह्वोराटोपेन गर्वेण तदङ्गे तेषां शत्रुसैन्यानां शरीरे ।

(१०) अतिरयाः अतिवेगवन्तस्तुरङ्गमा अश्वा यस्मिन् तम् । मद्रथमित्यस्य विशेषणम् । तस्य लाटपतेः निकटं समीपम् । शीघ्रलङ्घनेन सत्वराक्रमणेन उपेतः प्राप्तस्तदीयो लाटपतेरित्यर्थः, रथो येन सः तादृशोऽहम् । अरातेः शत्रोः लाटपतेरित्यर्थः । शिरःकर्तनं मस्तकच्छेदनम् । तस्मिन् लाटेश्वरे । पतिते मृते इत्यर्थः । तस्य लाटेश्वरस्य अवशिष्टेषु सैनिकेषु युद्धानन्तरं स्थितेषु बलेषु । नानाविधं बहुप्रकारं हयगजादिवस्तुजातं गजाश्वादिवस्तुसमूहम् । आदाय गृहीत्वा मदर्थमुपायनी-

---

अत्यन्त आदर तथा आग्रहके साथ भेंट किये हुए घोड़ोंसे खींचे जानेवाले रथपर जिसका सारथी भी प्रवीण था, दृढ़तर कवच और अपने योग्य धनुष तथा नाना प्रकारके शस्त्रायुधोंसे सुसज्जित एवं अनेक तरहके बाणोंसे भरे हुए दो तरकस तथा समरके योग्य जिरह-बख्तर धारण करके मन्त्रीके साथ-साथ युद्धस्थलमें आ पहुँचा । मन्त्री को मेरे पराक्रमपर पूर्ण विश्वास था, वह समझता था कि मैं शत्रुदलको पराजित करनेमें तथा उन्हें उखाड़फेंकनेमें पूर्ण दक्ष हूँ । परस्पर क्रोध होनेसे घमासान युद्ध करनेकी लालसासे परिपूर्ण दोनों सेनाओंका अतिक्रमण करके मैं अपने बाहुदण्डके पराक्रमके आरोपसे शत्रुओंके ऊपर बाणोंकी वृष्टि करने लगा ।

(१०) इसके बादमें बड़े वेगवाले अश्वोंसे संयुक्त अपने रथको शीघ्रही मराकाक्के रथके समीप ले आया । वह रथको लेकर भाग ही रहा था कि मैंने उसका शिर काट डाला

ममानेकविधां संभावनामकार्षीत् ।

(११) मानपालप्रेषितात्तदनुचरादेनमखिलमुदन्तजातमाकर्ण्य संतुष्टमना राजाभ्युद्गतो मदीयपराक्रमे विस्मयमानः समहोत्सवममात्यबान्धवानुमत्या शुभदिने निजतनयां मह्यमदात् । ततो यौवराज्याभिषिक्तोऽहमनुदिनमाराधितमहीपालचित्तो वामलोचनयानया सह नानाविधं सौख्यमनुभवन्भवद्विरहवेदनाशल्यसुलभवैकल्यहृदयः सिद्धादेशेन सुहृज्जनावलोकनफलं प्रदेशं महाकालनिवासिनः परमेश्वरस्याराधनायाद्य पत्नीसमेतः समागतोऽस्मि । भक्तवत्सलस्य गौरीपतेः कारुण्येन त्वत्पदारविन्दसंदर्शनानन्दसंदोहो मया लब्धः' इति ।

कर्त्तुमित्याशयः । परमानन्देन संभृतः पूर्णः । सम्भावनां सत्कारम् ।

(११) सन्तुष्टं मनो यस्य सः प्रीतचित्तः । राजा वीरकेतुः । अभ्युद्गतः सम्माननार्थमागतः । विस्मयमानः आश्चर्यमनुभवन् । निजतनयां बालचन्द्रिकाम् । युवा चासौ राजा चेति युवराजः तस्य भावो यौवराज्यं तस्मिन् अभिषिक्तो नियुक्तः । आराधितं सन्तोषितं महीपालस्य राज्ञः चित्तं मनो येन सः । भवतस्तव राजवाहनस्येत्यर्थः । विरहवेदना विच्छेदव्यथैव शल्यं शङ्कुस्तेन सुलभं अनायासप्राप्यं वैकल्यं विह्वलता हृदये यस्य सः । भवद्विरहदुःखाकुलचेष्टा इत्यर्थः । सिद्धादेशेन सिद्धादेशवशात् । सुहृज्जनस्य मित्रस्यावलोकनं दर्शनमेव फलं प्रयोजनं यत्र तम्—प्रदेशविशेषणमेतत् । अस्मिन् प्रदेशे त्वत्प्रार्थितं मित्रदर्शनं भविष्यतीति सिद्धेनादिष्टम् । महाकालो नामोज्जयिन्यां प्रसिद्धं महादेवस्थानम् । आराधनायार्चनाय । भक्तेषु सेवकेषु वत्सलो दयालुः तस्य । तव पदारविन्दयोश्चरणकमलयोः सन्दर्शनेन अवलोकनेन य आनन्दो हर्षस्तस्य । सन्दोहोऽतिशयः ।

उसके गिरते ही उसके शेष योधा भाग गये । तब रिपुके अनेक तरहके हाथी-घोड़े-रथादि शस्त्रास्त्रोंको लेकर मैं मन्त्रीके समीप उपस्थित हुआ । जिसे देखकर परमानन्दित मानपाल ने मेरा अतीव आदर-सत्कार किया ।

(११) तदनन्तर मानपाल द्वारा प्रेषित सेवकोंसे मत्तकालका वध और मेरा शु-श्रवणकर राजा वीरकेतु अति प्रमुदित हुआ । मेरे पराक्रमको जानकर आश्चर्यान्वित होकर तथा अपने मन्त्रियों और बन्धु-बान्धवोंसे राय करके शुभ दिवसमें सविधि अपनी पुत्रीका परिणय मेरे साथ कर दिया । और कुछ दिनों पश्चात् यौवराज्यपर मुझे विभूषितकर दिया । मैं भी अपनी सेवाओंसे राजाको प्रसन्न रखता हुआ प्रतिदिन इन वामलोचनाके साथ आनंदो-पभोग करने लगा । परन्तु आपकी विरहजनित वेदनासे विकलचित्त होकर मैं, अपनी पत्नीके साथ, एक सिद्धपुरुषके आदेशसे, महाकालनिवासी परमेश्वरके आराधनार्थ इस स्थानमें आप

(१२) तन्निशम्याभिनन्दितपराक्रमो राजवाहनस्तन्निरपराधदण्डे दैवमुपालभ्य तस्मै क्रमेणात्मचरितं कथयामास। तस्मिन्नवसरे पुरतः पुष्पोद्भवं विलोक्य ससंभ्रमं निजनिटिलतटस्पृष्टचरणाङ्गुलिमुदञ्जलिममुं गाढमालिङ्ग्यानन्दवाष्पसंकुलसंफुल्ललोचनः 'सौम्य सोमदत्त, अयं स पुष्पोद्भवः' इति तस्मै तं दर्शयामास।

(१३) तौ च चिरविरहदुःखं विसृज्यान्योन्यालिङ्गनसुखमन्वभूताम्।

ततस्तस्यैव महीरुहस्य छायायामुपविश्य राजा सादरहासमभाषत— 'वयस्य, भूसुरकार्यं करिष्णुरहं मित्रगणो विदितार्थः सर्वथान्तरायं करिष्यतीति निद्रितान्भवतः परित्यज्य निरगाम्। तदनु प्रबुद्धो वयस्यवर्गः कि-

---

(१२) अभिनन्दितः प्रशंसितः पराक्रमः सोमदत्तस्य विक्रमो येन सः। तस्य सोमदत्तस्य निरपराधदण्डे अपराधाभावेऽपि प्राप्ते दण्डविषये। दैवमदृष्टम् उपालभ्य विनिन्द्य। तस्मै सोमदत्ताय। ससम्भ्रमं सचकितम्। निजस्य स्वस्य निटिलतटे भालस्थले स्पृष्टाः संसक्ताश्चरणाङ्गुलयो राजवाहनस्येति शेषः येन तम्। उदञ्जलिं कृताञ्जलिम्। अमुं पुष्पोद्भवम्। आनन्दवाष्पेण हर्षजनिताश्रुणा संकुले व्याप्ते संफुल्ले विकसिते लोचने नेत्रे यस्य सः तस्मै सोमदत्ताय। तं पुष्पोद्भवम्।

(१३) तौ सोमदत्तपुष्पोद्भवौ। चिरविरहदुःखं दीर्घकालादर्शनजनितक्लेशम्। तस्यैव पूर्ववर्णितस्य। सादरो हासो यस्मिन् तद् क्रियाविशेषणमिदम् आदरेण स्मित्वेत्यर्थः। भूसुरकार्यं विप्रकृत्यम्। मित्रगणः यूयमित्यर्थः। विदितार्थः अवगत-

---

हूँ। यहाँ भक्तवत्सल गौरीपति विश्वनाथके प्रसादसे आज मैं आपके इन पदारविन्दोंके दर्शन पा रहा हूँ।

(१२) उसके मुखसे यह सब वृत्तान्त श्रवणकर कुमार राजवाहनने उसके (सोमदत्तके) पराक्रमकी अति प्रशंसा की और निरपराधीको दण्ड देनेके निमित्त दैवको उपालम्भ दिया तथा क्रमशः अपना चरित कह सुनाया। उसी अवसरपर बड़े हर्षके साथ अपना शिर झुकाये हुए तथा राजवाहनके चरणकी अङ्गुलिपर अपना मस्तक स्पर्शित किये हुए पुष्पोद्भवको अपने समीप खड़े देखा। राजवाहनने शीघ्र उठकर उसे कंठसे लगाया और आनन्दाश्रु भरे नयनोंसे देखते हुए उससे कहा—हे सौम्य, देखो, यह पुष्पोद्भव भी आ पहुँचा। ऐसा कहकर सोमदत्तको दिखाया।

(१३) उन दोनोंने भी परस्पर आलिंगनकर अतिकालसे प्राप्त वियोग व्यथाको त्यागकर सुख प्राप्त किया। तदनन्तर उसी सघन वृक्षकी छायामें बैठकर राजाने बड़े आदरके साथ प्रफुल्लचित्त होकर कहा—'हे मित्र! हे सखे! जब मैं उस विप्रका कार्य करनेके लिये जानेको सोचने लगा तब मैंने यह भी सोचा कि यदि आप लोगोंसे (मित्रोंसे) कहूँगा

मिति निश्चित्य मदन्वेषणाय कुत्र गतवान्। भवानेकाकी कुत्र गतः' इति
सोऽपि ललाटतटचुम्बदञ्जलिपुटः सविनयमलपत्।

इति श्रीदण्डिनः कृतौ दशकुमारचरिते सोमदत्तचरितं नाम
तृतीयः उच्छ्वासः।

चतुर्थोच्छ्वासः

(१) 'देव, महीसुरोपकारायैव देवो गतवानिति निश्चित्यापि दे
गन्तव्यं देशं निर्णेतुमशक्नुवानो मित्रगणः परस्परं वियुज्य दिक्षु दे
न्वेष्टुमगच्छत्।

विषयः। अन्तरायं विघ्नम्। प्रबुद्धो जागरितः। भवान् पुष्पोद्भव इत्यर्थः। लल
तटं चुम्बद् अञ्जलिपुटं यस्य सः शिरसि अञ्जलिं बद्ध्वेत्यर्थः।

इति श्रीताराचरणभट्टाचार्यकृतायां बालविबोधिनीसमाख्याया
दशकुमारचरितव्याख्यायां तृतीयः उच्छ्वासः।

---

(१) महीसुरोपकारायैव ब्राह्मणस्य साहाय्यं कर्तुमेव। देवो भवान् राज
इत्यर्थः। निश्चित्यापि निर्णीयापि। देवेन भवता। निर्णेतुमवधारयितुम्। वि
पृथग्भूय। दिक्षु विभिन्नदेशेषु।

तो आप लोग अवश्य बाधक होंगे और इसी कारण आप लोगोंको सोते छोड़कर मैं
विप्रके साथ चला गया। उस ब्राह्मणके साथ चले जानेपर आप लोग जब जगे और
पाया तब क्या निश्चय किया और कहाँ-कहाँ आप लोग गये और आप अकेले कहाँ
सो सब कहें। यह सुनकर विनयपूर्वक अञ्जलि होकर तथा हाथोंको अपने सि
लगा-कर वह पुष्पोद्भव कहने लगा।

इस प्रकारसे तृतीय उच्छ्वासकी बालक्रीड़ा हिन्दी टीका समाप्त हुई।

(१) हे देव! आप ब्राह्मणके ही उपकारार्थ गये होंगे। यह निश्चय होनेपर भी
लोग यह न ज्ञात कर सके कि आप किस देशमें गये हैं। और जब यह 'अनिश्चित
तब हम लोग परस्पर संकेतस्थलका (पुनः आकर मिलनेके स्थानका) निश्चय
आपके अन्वेषणार्थ अलग-अलग देशों में गये।

(२) अहमपि देवस्यान्वेषणाय महीमटन्कदाचिदम्बरमध्यगतस्याम्बरमणेः किरणमसहिष्णुरेकस्य गिरितटमहीरुहस्य प्रच्छायशीतले तले क्षणमुपाविशम् । मम पुरोभागे दिनमध्यसंकुचितसर्वावयवां कूर्माकृतिं मानुषच्छायां निरीक्ष्योन्मुखो गगनतलान्महारयेण पतन्तं पुरुषं कंचिदन्तराल एव दयोपनतहृदयोऽहमवलम्ब्य शनैरवनितले निक्षिप्य दूरापातवीतसंज्ञं तं शिशिरोपचारेण विबोध्य शोकातिरेकेणोद्गतबाष्पलोचनं तं भृगुपतनकारणमपृच्छम् ।

(३) सोऽपि कररुहैरश्रुकणानपनयन्नभाषत— सौम्य, मगधाधिना-

(२) अहम् पुष्पोद्भवः । महीमटन् भुवं भ्रमन् । अम्बरमध्यगतस्य आकाशमध्यमारूढस्य अम्बरमणेः सूर्यस्य । किरणं तापम् । पुरोभागे सम्मुखे । दिनस्य दिवसस्य मध्ये मध्यभागे मध्याह्न इत्यर्थः । संकुचिताः संक्षिप्ताः सर्वे निखिला अवयवा अङ्गानि यस्यास्ताम् । मध्याह्ने सूर्यस्योपरिस्थितिः छायासंकोचश्च प्रसिद्ध एव कूर्माकृतिं कच्छपाकाराम् । उन्मुखः ऊर्ध्वमुखः अहमिति शेषः । महारयेण अतिवेगेन । अन्तराले मध्ये भूमिपतनात्पूर्वमेवेत्यर्थः । दयया करुणया उपनतं नम्रीभूतं हृदयं चित्तं यस्य सः अवलम्ब्य गृहीत्वा । निक्षिप्य संस्थाप्य । दूराद् दूरदेशादापातः पतनं तेन वीताऽपगता संज्ञा चेतना यस्य तम् । तं पतन्तं पुरुषम् । शिशिरोपचारेण जलसेकादिना । विबोध्य प्रकृतिस्थं कृत्वा । शोकातिरेकेण दुःखातिशयेन । उद्गतं निर्गतं बाष्पमश्रु याभ्यां तादृशी लोचने यस्य तम् । भृगोः प्रपातात् पतनस्य कारणं हेतुम् । प्रपातस्त्वतटो भृगुरित्यमरः । प्रच्छधातोर्द्विकर्मकत्वात्कर्मद्वयम् ।

(३) सोऽपि पुरुषोऽपि । कररुहैर्नखैरङ्गुलिभिरिति भावः । अश्रुकणान् नेत्रजल-

(२) भ्रमण करते हुए पृथिवीपर घूमते-घूमते एक दिन सूर्यके प्रखर तेजसे व्याकुल होकर एक पर्वतके किनारे एक सघन छायावाले तरुके नीचे एक क्षण विश्रामार्थ बैठ गया। उस छायामें बैठते ही क्षण भरमें कुछ आहट मालूम पड़ी और सामने मध्याह्नके होनेके कारण संकुचित सर्वावयव कछुएके समान एक पुरुषाकृति दिखाई दी। मैंने ऊपरकी ओर मुँह करके देखा तो ज्ञात हुआ कि कोई पुरुष आकाशकी ओरसे गिरकर नीचे आ रहा है। यह देखकर मेरे अन्तःकरणमें दया आ गयी। और मैंने उसे बीचमें ही रोककर नीचे उतार दिया। पृथिवीतलपर धीरेसे रखकर शीतलोपचारसे उसे प्रबुद्ध किया—क्योंकि वह मूर्च्छित हो गया था। अति शोकके कारण उसकी आँखोंसे आँसू बह रहे थे। मैंने उससे पहाड़परसे कूदनेका कारण पूछा—

(३) वह अपने हाथोंसे आँसुओंको पोंछकर कहने लगा—हे सौम्य ! मैं मगधदेशाधि-

थामात्यस्य पद्मोद्भवस्यात्मसंभवो रत्नोद्भवो नामाहम् । वाणिज्यरूपेण कालयवनद्वीपमुपेत्य कामपि वणिक्कन्यकां परिणीय तया सह प्रत्यागच्छन्नम्बुधौ तीरस्यानतिदूर एव प्रवहणस्य भग्नतया सर्वेषु निमग्नेषु कथंकथमपि दैवानुकूल्येन तीरभूमिमभिगम्य निजाङ्गनावियोगदुःखार्णवप्लवमानः कस्यापि सिद्धतापसस्यादेशादरेण षोडश हायनानि कथंचिन्नीत्वा दुःखस्य पारं अनवेक्षमाणः गिरिपतनमकार्षम्' इति ।

(४) तस्मिन्नेवावसरे किमपि नारीकूजितमश्रावि—'न खलु समुचितमिदं यत्सिद्धादिष्टे पतितनयमिलने विरहमसहिष्णुर्वैश्वानरं वि-

---

विन्दून् । अपनयन् दूरीकुर्वन् । सौम्य सुन्दर ! मगधाधिनाथामात्यस्य राजहंसमन्त्रिणः । आत्मसम्भवः तनयः । वाणिज्यरूपेण वाणिज्याभिलाषेण । परिणीय विवाह्य । प्रत्यागच्छन् तस्माद्द्वीपान्निवर्तमानः । अम्बुधौ समुद्रे । अनतिदूरे समीपे । प्रवहणस्य पोतस्य नौकाया इति यावद । सर्वेषु पोतस्थितेषु निखिलजनेषु निमग्नेषु सागरे इति शेषः । कथंकथमपि अतिकष्टेन । दैवानुकूल्येन भागधेयसाहाय्येन । अभिगम्य प्राप्य । निजायाः स्वकीयाया अङ्गनायाः पत्न्या यद्वियोगदुःखं विनाशक्लेशः स एवार्णवः सागरस्तस्मिन् । प्लवमानः सन्तरन् । आदेशादरेण वचनविश्वासेन । हायनानि वत्सरान् । कथञ्चित् महता कष्टेन । नीत्वा यापयित्वा । दुःखस्य पारं दुर्दशाशेषम् । अनवेक्ष्यमाणोऽपश्यन् ।

(४) अवसरे समये । नारीकूजितं स्त्रीक्रन्दितम् । अश्रावि श्रुतं मयेति शेषः । समुचितं युक्तम् । सिद्धादिष्टे सिद्धकथिते । पत्युः स्वामिनस्तनयस्य पुत्रस्य च मिलने सम्मेलने । षोडशवर्षानन्तरं ते पतिपुत्रसमागमो भविष्यतीति सिद्धेन कथिते सति

पतिके अमात्य पद्मोद्भवका पुत्र हूँ, मेरा नाम रत्नोद्भव है । व्यापारके सिलसिलेमें कालयवन द्वीपमें गया था । वहाँ एक वणिक्सुताके साथ मेरा परिणय हुआ । उसे साथ लेकर नावद्वारा मैं अपने देश आ रहा था । थोड़ी दूर आगे आनेपर समुद्रमें मेरी नाव एक प्रस्तरसे टकराकर टूट गयी । तथा सभी उसपर आरूढ यात्री जलमग्न हो गये । दैववश मैं बहता हुआ तीरभूमिपर आ लगा । फिर अपनी पत्नीकी विरहरूपी व्यथाके सागरमें बहता एक तपस्वीके पास गया । उसके आश्वासन दिलानेपर कि सोलह वर्षमें तुम्हारी पत्नी मिलेगी—१६ वर्ष बिताये, परन्तु अब भी उसके न मिलनेसे निराश होकर दुःखका अन्त करनेके लिये पर्वतसे कूद पड़ा ।

(४) उसी क्षण एक तरफसे रोते हुए यह शब्द सुनाई पड़ा—'हे बाले ! अब तपस्वीने बता दिया है कि तुम्हारे पति और पुत्र दोनों १६ वर्षमें मिल जायेंगे तो फिर

शसि' इति ।

(५) तन्निशम्य मनोविदितजनकभावं तमवादिषम्—'तात, भवते विज्ञापनीयानि बहूनि सन्ति । भवतु । पश्चादखिलमाख्यातव्यम् । अधुना नारीकूजितमनुपेक्षणीयं मया । क्षणमात्रमत्र भवता स्थीयताम्' इति ।

(६) तदनु सोऽहं त्वरया किंचिदन्तरमगमम् । तत्र पुरतो भयङ्कर-ज्वालाकुलहुतभुगवगाहनसाहसिकां मुकुलिताञ्जलिपुटां वनितां काचिदव-लोक्य ससंभ्रममनलादपनीय कूजन्त्या वृद्धया सह मत्पितुरभ्यर्णमभिग-मय्य स्थविरामवोचम्—'वृद्धे, भवत्यौ कुत्रत्ये । कान्तारे निमित्तेन केन

त्यर्थः । असहिष्णुः सोढुमशक्नुवन् । वैश्वानरमग्निम् । विशसि त्वमिति अनुचित-मिदमिति कथाचिदुच्यते ।

(५) मनसा चित्तेन ममेति शेषः विदितो ज्ञातो जनकभावो मत्पितृत्वं यस्य तम् अयमेव मे पितेति मया निश्चयविषयीकृतमिति भावः । तं पुरुषम् । अवादिषम् उक्तवानहमिति शेषः । भवते तुभ्यम् । विज्ञापनीयानि अवश्यवक्तव्यानि । पश्चात् नारीकूजितश्रवणानन्तरम् । अखिलं सर्वम् आख्यातव्यं कथनीयं मयेति शेषः । अनुपेक्षणीयं उपेक्षितुमनुचितम् ।

(६) तदनु तदनन्तरम् । सोऽहं तथाविध एव । त्वरया वेगेन । अन्तरं दूरम् पुरतोऽग्रतः भयंकरज्वालाभिः भीषणशिखाभिराकुले व्याप्ते हुतभुजि वह्नौ अवगाहने प्रवेशे साहसिकां कृतोत्साहाम्—अनलप्रवेष्टुमुद्यतामित्यर्थः । मुकुलिताञ्जलिपुटां बद्धाञ्जलिम् । ससम्भ्रमं सत्वरम् । अनलाद् अग्नेः । अपनीय दूरीकृत्य । कूजन्त्या क्रन्दन्त्या । अभ्यर्णं समीपम् । अभिगमय्य प्रापय्य । अभिपूर्वकगमेर्णिजन्ताल्ल्यप् । स्थविरां वृद्धाम् । भवत्यौ त्वमेषा च । कुत्रत्ये कस्मात् । स्थानादागते । निमित्तेन

वियोगजनित कष्टको सहनेमें असमर्थ होकर प्राणोंको अग्निमें कूदकर छोड़ना चाहती हो, यह बात सर्वथा अनुचित है।

(५) यह वार्ता श्रवणकर मेरे मनमें आया कि ये मेरे पिता हैं और मैंने उनसे कहा—'हे तात ! मुझे आपसे अभी बहुत कुछ वार्ता करनी है । अतः आप बैठें, मैं क्षणभर भी इस नारीके रोदनकी उपेक्षा नहीं कर सकता हूँ ।

(६) ऐसा कहकर मैं शीघ्र बड़े वेगसे उस ओर गया जिधरसे महिलाकी वह ध्वनि आ रही थी । वहाँपर मैंने देखा कि, एक वनिता हाथ जोड़े बैठी हुई है और उसके सम्मुख भयंकर अग्निज्वाला जल रही है तथा वह उसकी ज्वालामें कूदनेको उद्यत है । मैंने तुरत ही वहाँ पहुँचकर उसे [illegible] अग्निके पाससे दूर कर दिया । फिर समीपमें ही रोनेवाली

दुरवस्थानुभूयते । कथ्यताम्' इति ।

(७) सा सगद्गदमवादीत्—'पुत्र, कालयवनद्वीपे कालगुप्तनाम्नो वणिजः कस्यचिदेषा सुता सुवृत्ता नाम रत्नोद्भवेन निजकान्तेनागच्छन्ती जलधौ मग्ने प्रवहणे निजधात्र्या मया सह फलकमेकमवलम्ब्य दैवयोगेन कूलमुपेतासन्नप्रसवसमया कस्याञ्चिदटव्यामात्मजमसूत । मम तु मन्दभाग्यतया बाले वनमातङ्गेन गृहीते मद्द्वितीया परिभ्रमन्ती 'षोडशवर्षानन्तरं भर्तृपुत्रसङ्गमो भविष्यति' इति सिद्धवाक्यविश्वासादेकस्मिन्पुण्याश्रमे तावन्तं समयं नीत्वा शोकमपारं सोढुमक्षमा समुज्ज्वलिते वैश्वानरे शरीरमाहुतीकर्तुमुद्युक्तासीत्' इति ।

कारणेन । दुरवस्था एतादृशी दुर्दशा । अनुभूयते भवतीभ्यामिति शेषः ।

(७) सा वृद्धाः सगद्गदं बाष्परुद्धकण्ठम् । निजकान्तेन स्वभर्त्रा । फलकं काष्ठखण्डम् । कूलं तीरमुपेता प्राप्ता । आसन्नः प्राप्तः प्रसवसमयो यया सा । मन्दभाग्यतया दुरदृष्टवशेन । बाले शिशौ । वनमातङ्गेन आरण्यगजेन । मद्द्वितीया अहं द्वितीया यस्याः सा मच्छरणेत्यर्थः । तावन्तं षोडशवर्षमितम् । नीत्वा यापयित्वा । अपारं अनन्तम् । अक्षमा असमर्था । समुज्ज्वलिते प्रज्वलिते । आहुतीकर्तुं प्रक्षेप्तुं भस्मसात्कर्तुमित्यर्थः ।

एक वृद्धा बैठी थी उसे और उस वनिताको लेकर अपने पिताके पास आया और पिताके सामने ही वृद्धासे उसके अग्निप्रवेशका कारण पूछा—हे वृद्धे ! तुम दोनों कौन हो तथा क्योंकर आगमें यहाँ प्रविष्ट हो रही थीं ? और तुम लोग कहाँकी निवासिनी हो । इस अरण्यमें क्यों कष्ट सह रही हो ?

(७) वह वृद्धा गद्गद स्वरमें बोली—'हे पुत्र ! कालयवनद्वीपमें कालगुप्त नामक एक वणिक् रहता था । उसकी सुवृत्ता नामक यह कन्या है । यह कन्या अपने पति रत्नोद्भवके साथ नावपर आ रही थी । दैववश नाव, बीच समुद्रमें, टूटकर डूब गयी । धात्रीभावसे नियुक्त मैं और यह कन्या एक काठके सहारे समुद्रतटपर आ लगी । यह आसन्नप्रसवा थी । अतः इसने पास हीके विपिनमें एक पुत्र उत्पन्न किया । दुर्भाग्यसे एक जंगली हाथी उस बालकको उठा ले गया । मेरे साथ विलपती हुई यह एक तपस्वीके समीप गयी । उनके उपदेशपूर्ण कथनपर कि १६ वर्षमें तुम्हारे पति–पुत्र मिल जायेंगे यह कन्या मेरे साथ एक पवित्र आश्रममें निवासकर जीवन–यापन करने लगी । परन्तु १६ वर्ष होनेपर भी जब इसे पति–पुत्र न मिले तो यह अपार शोक–सागर पार करनेमें चिन्तित हो गयी और इस अग्निमें प्रवेश करनेके लिए तैयार हो गयी ।

(८) तदाकर्ण्य निजजननीं ज्ञात्वा तामहं दण्डवत्प्रणम्य तस्यै मद्वृत्तमखिलमाख्याय धात्रीभाषणफुल्लवदनं विस्मयविकसिताक्षं जनकमदर्शयम् । पितरौ तौ साभिज्ञानमन्योन्यं ज्ञात्वा मुदितान्तरात्मानौ विनीतं मामानन्दाश्रुवर्षेणाभिषिच्य गाढमाश्लिष्य शिरस्युपाघ्राय कस्यांचिन्महीरुहच्छायायामुपाविशताम् ।

(९) 'कथं निवसति महीवल्लभो राजहंसः' इति जनकेन पृष्टोऽहं तस्य राज्यच्युतिं त्वदीयजननं सकलकुमारावाप्तिं तव दिग्विजयारम्भं भवतो मातङ्गानुयानमस्माकं युष्मदन्वेषणकारणं सकलमभ्यधाम् । ततस्तौ कस्यचिदाश्रमे मुनेरस्थापयम् । ततो देवस्यान्वेषणपरायणोऽहमखिलका-

---

(८) निजजननीं ज्ञात्वा इयमेव मे मातेति निश्चित्य तस्यै मात्रे मद्वृत्तं मद्वृत्तान्तम् । धात्र्या वृद्धायाः भाषणेन वचनश्रवणेन फुल्लं हर्षविकसितं वदनमाननं यस्य तम् । विस्मयेन आश्चर्यरसेन विकसिते उत्फुल्ले अक्षिणी नेत्रे यस्य तम् । अदर्शयं दर्शितवानहमिति शेषः । माता च पिता चेति पितरौ । साभिज्ञानं परस्परपरिचयसूचकचिह्नेन । मुदितौ हृष्टोऽन्तरात्मा ययोस्तौ । विनीतं प्रश्रयावनतम् । आनन्दाश्रुवर्षेण हर्षजनितनेत्रजलवर्षणेन । गाढं दृढम् । आश्लिष्य आलिङ्ग्य । शिरसि मस्तके । उपाघ्राय घ्राणं कृत्वा । महीरुहच्छायायां वृक्षच्छायायाम् । उपाविशताम् उपविष्टौ ताविति शेषः ।

(९) कथं केन प्रकारेण महीवल्लभो राजा । तस्य राजहंसस्य । राज्यच्युतिं राज्यभ्रंशं । त्वदीयजननं त्वदीयोत्पत्तिम् । मातङ्गानुयानं तदाख्यब्राह्मणस्यानुसरणम् । अभ्यधाम् अकथयम् । तौ मातापितरौ । देवस्य भवतः । अखिलानि सम्पूर्णानि कार्याणि तेषां निमित्तं साधनम् । वित्तं धनम् । साधकत्वस्य सिद्धादेशक-

---

(८) इन बातोंको सुनकर मैंने समझ लिया कि यह महिला मेरी माँ है । अतः मैंने उसे प्रणाम किया और अपनी पूरी कथा कह सुनायी । फिर धात्रीकी वार्ता सुनकर प्रफुल्लित मुखवाले और विस्मयसे प्रफुल्ल नयनोंवाले अपने पिताको उनके दर्शन कराये । पुनः माता-पिताने परस्पर अपने परिज्ञानोंसे अन्योन्यको समझ लिया और प्रसन्न होकर उन दोनोंने मुझे अपने हृदयमें लगा लिया तथा अश्रुओंसे मुझे भिगोकर विनीतभावसे मेरा माथा सूँघा तथा पासके एक वृक्षकी छायामें हम लोग बैठे ।

(९) पिताजीके यह पूछनेपर कि, महाराज राजहंसका क्या समाचार है ? मैंने उनको राजच्युतिका, आपके जन्मका, सब कुमारोंके सम्मिलनका, आपके दिग्विजयके लिए प्रस्थानका, आपके मातङ्गके निमित्त पातालप्रवेशका और आपके अन्वेषणार्थ हम लोगोंके

येनिमित्तं वित्तं निश्चित्य भवदनुग्रहाल्लब्धस्य साधकत्वस्य साहाय्यकरणदक्षं शिष्यगणं निष्पाद्य विन्ध्यवनमध्ये पुरातनपत्तनस्थानान्युपेत्य विविधनिधिसूचकानां महीरुहाणामधोनिक्षिप्तान्वसुपूर्णान्कलशान् सिद्धाञ्जनेन ज्ञात्वा रक्षिषु परितः स्थितेषु खननसाधनैरुत्पाद्य दीनारानसंख्यान् राशीकृत्य तत्कालागतमनतिदूरे निवेशितं वणिक्कटकं कश्चिदभ्येत्य तत्र बलिनो बलीवर्दान् गोणीश्च क्रीत्वान्यद्रव्यमिषेण वसु तत्गोणीसंचितं तैरुह्यमानं शनैः कटकमनयम् ।

(१०) तदधिकारिणा चन्द्रपालेन केनचिद्वणिक्पुत्रेण विरचितसौ-

त्वस्य । साहाय्यकरणे दक्षं निपुणम् । निष्पाद्य एकीकृत्य । पुरातनपत्तनस्थानानि प्राचीननगरभूमीः । विविधनिधिसूचकानां नानारत्नकुम्भस्थितिनिर्देशकानां महीरुहाणां वृक्षाणाम् । वसुपूर्णान् धनपूरितान् । सिद्धाञ्जनेन नयनदत्तकज्जलेन । रक्षिषु रक्षापुरुषेषु । परितः समन्तात् स्थितेषु वर्तमानेषु । खननसाधनैः खनित्रादिखननोपायैः । उत्पाद्य भूमिमध्यादुत्थाप्य । दीनारान् स्वर्णमुद्रादीन् तत्कालगतं तस्मिन् समये तत्रोपस्थितम् । अनतिदूरे निकटे निवेशितं स्थापितम् । वणिक्कटकं वणिक्शिबिरम् । अभ्येत्य गत्वा । बलिनो बलवतः पुष्टानित्यर्थः । बलीवर्दान् वृषभान् गोणीः धान्यादिवहनार्थाधारविशेषान् । अन्यद्रव्यमिषेण द्रव्यान्तरच्छलेन । तैः बलीवर्दैः शनैर्मन्दं मन्दं क्रमश इति भावः ।

(१०) तदधिकारिणा कटकस्वामिना । विरचितं कृतं सौहृदं मैत्री येन सः ।

जानेका समस्त वृत्त कह सुनाया । तब मैंने उन दोनोंको एक मुनिकी कुटीमें ले जाकर स्थित कर दिया । फिर मैं आपकी खोजमें निकला । मैंने एक दिन विचार किया कि सभी कार्य धनसे साधे जाते हैं । आपकी दयासे उसी क्षण मुझे धन-प्राप्तिकी साधनाका एक उपाय प्राप्त हो गया । और मैंने कुछ दक्ष शिष्योंको धनलब्धकत्वमें समर्थ किया तथा विन्ध्याचलके एक प्राचीन नगरके भग्नावशेष स्थलमें आ पहुँचा । सिद्धाञ्जनसे मैंने नाना प्रकारके कोषोंकी सूचना देनेवाले वृक्षोंके नीचे स्थापित पृथ्वीके भीतरके घड़ोंको ज्ञात कर लिया । मैंने उन वृक्षोंके चारों ओर रक्षकोंको खड़ा कर दिया और कुदारी आदिसे पृथ्वी खोदवाकर अगणित मुद्राएँ एकत्र कीं । तत्पश्चात् तत्काल आए हुए वणिक्-समुदायसे पूरित पास हीके स्थलमें पहुँचा । उन लोगोंसे मैंने अति बलिष्ठ कुछ बैल तथा गाड़ियाँ खरीदीं और अन्नादिके ढोने का बहाना करके उन गाड़ियोंपर सुवर्ण लादकर धीरे-धीरे उस स्थानपर आ पहुँचा ।

(१०) फिर बनियोंके अधिपति चन्द्रपाल नामक वणिक् पुत्रसे मित्रता करके उसीके

हृदोऽहममुनैव साकमुज्जयिनीमुपाविशम् । मत्पितरावपि तां पुरीमभिगम्य सकलगुणनिलयेन बन्धुपालनाम्ना चन्द्रपालजनकेन नीयमानौ मालवनाथदर्शनं विधाय तदनुमत्या गूढवसतिमकरवम् । ततः काननभूमिषु भवन्तमन्वेष्टुमुद्युक्तं मां परममित्रं बन्धुपालो निशम्यावदत्— सकलं धरणितलमपारमन्वेष्टुमक्षमो भवान्मनोग्लानिं विहाय तूष्णीं तिष्ठतु । भवन्नायकालोकनकारणं शुभशकुनं निरीक्ष्य कथयिष्यामि इति ।

(११) तल्लपितामृताश्वासितहृदयोऽहमनुदिनं तदुपकण्ठवर्ती कदाचिदिन्दुमुखीं नवयौवनावलीढावयवां नयनचन्द्रिकां बालचन्द्रिकां नाम तरुणीरत्नं वणिङ्मन्दिरलक्ष्मीं मूर्तामिवावलोक्य तदीयलावण्यावधूतधी-

---

अमुना चन्द्रपालेन । उपाविशं न्यवसम् । मत्पितरौ मदीयां जननीं जनकञ्च । तां पुरीमुज्जयिनीम् । अभिगम्य प्राप्य । सकलानां सर्वेषां गुणानां शौर्यदाक्षिण्यादीनां निलय आधारस्तेन । मालवनाथदर्शनं उज्जयिनीपतिसन्दर्शनम् । तदनुमत्या तस्य मालवनाथस्यानुमत्याऽऽज्ञया । गूढवसतिं गुप्तवासम् । अपारमनन्तम् । अक्षमोऽसमर्थः । मनोग्लानिं निर्वेदम् । भवतस्तव नायकस्य प्रभोरालोकनस्य दर्शनस्य कारणं निमित्तम् । शुभशकुनं मङ्गलचिह्नम् ।

(११) तस्य बन्धुपालस्य लपितं भाषितमेवामृतं तेन । आश्वासितं निर्वृतं हृद् स्वान्तं यस्य सः । अहं पुष्पोद्भवः तस्य बन्धुपालस्य उपकण्ठवर्ती समीपवर्ती । नवयौवनेन अवलीढा व्याप्ता अवयवा अङ्गानि यस्यास्ताम् । नयनयोर्नेत्रयोः चन्द्रिका ज्योत्स्नारूपिणी ताम् मूर्तां मूर्तिमतीम् । तदीयेन बालचन्द्रिकासम्बन्धिना लावण्येन सौन्दर्येण अवधूतस्तिरस्कृतो धीरभावो धैर्यं यस्य सः । लतान्ताः कुसुमानि बाणाः शरा यस्य सः काम इत्यर्थः तस्य बाणलक्ष्यतां शरव्यत्वम् अयासिषमग-

---

साथ-साथ उज्जैन चला गया । कुछ कालके अनन्तर मैं अपने माता-पिताको भी वहीं ले आया । सकलगुणनिधान चन्द्रपालके पिता बन्धुपालके साथ मालवेशका दर्शन किया तथा उनकी आज्ञासे वनकी भूमिपर प्रच्छन्नवेशसे निवास करने लगा । एकदा वनमें आपको खोजते हुए ज्ञातकर मेरे परम मित्र बन्धुपालने कहा—यह भूमण्डल अति विशाल है, इसका अन्वेषण करना सर्वथा असम्भव है । अतः आप शान्ति धरकर चुप बैठें । शुभ समय आने पर मैं शुभ शकुन बता दूँगा । तब आप अन्वेषण करें तो सफल होंगे ।

(११) उसके उन सुधामय वचनोंको सुनकर मेरा चित्त कुछ शान्त हुआ तथा मैं प्रति दिन उसके पास जाने लगा । एक दिन मैंने साक्षात् लक्ष्मीस्वरूपा एक सुन्दरीको जो गृहके समीप रहती थी, देखा । वह अति मनोज्ञा थी । उसके मुखकी शोभा चन्द्रमाके समान थी ।

रभावो लतान्तबाणबाणलक्ष्यतामयासिषम् ।

(१२) चकितबालकुरङ्गलोचना सापि कुसुमसायकसायकायमानेन कटाक्षवीक्षणेन मामसकृन्निरीक्ष्यमन्दमारुतान्दोलिता लतेवाकम्पत । मनसाभिमुखैः समाकुञ्चितैः रागलज्जान्तरालवर्तिभिः साङ्गवर्तिभिरीक्षणविशेषैर्निजमनोवृत्तिमकथयत् ।

(१३) चतुरगूढचेष्टाभिरस्या मनोऽनुरागं सम्यग्ज्ञात्वा सुखसंगमोपायमचिन्तयम् । अन्यदा बन्धुपालः शकुनैर्भवद्गतिं प्रेक्षिष्यमाणः पुरोपान्त-

---

मम् । तदीयलावण्यदर्शनात्कामबाणविद्धोऽहमभवमिति तात्पर्यम् ।

(१२) चकितस्य भीतस्य बालकुरङ्गस्य चपलमृगस्य लोचने नयने इव लोचने यस्याः सा । चञ्चलनयनेत्यर्थः । सापि बालचन्द्रिकापि । कुसुमसायकस्य कामस्य सायकः इवाचरतीति तेन—कामबाणसदृशेनेत्यर्थः । असकृद् वारं वारम् । मन्दमारुतेन धीरसमीरेण आन्दोलिता कम्पिता । मनसा हृदयेन । अभिमुखैः मय्यर्पितः । समाकुञ्चितैर्लज्जया खर्वीकृतैः असमग्रपातिभिरिति भावः । रागोऽनुरागः लज्जा त्रपा तयोरन्तराले मध्ये वर्तन्ते ये तैः – अनुरागव्यञ्जकैरपि सलज्जैरित्यर्थः । अङ्गभङ्ग्या सह वर्तमानैः साङ्गभङ्गिभिः एतानि ईक्षणविशेषैरित्यस्य विशेषणानि । ईक्षणविशेषैः कटाक्षैरिति भावः । निजमनोवृत्तिं स्वमनोव्यापारं–अभिलाषमिति यावत् । अकथयत् प्राकाशयत् ।

(१३) चतुराः पेशला गूढा गुप्ताश्च याश्चेष्टाः कटाक्षादयस्ताभिः । अस्या बालचन्द्रिकायाः । सुखेनानायासेन यः सङ्गमो मिलनं तस्योपायं साधनम् । अन्यदा अन्यस्मिन् समये । शकुनैः निमित्तैः सामुद्रिकादिशास्त्रप्रदर्शितैश्चिह्नविशेषैः । भवद्गतिं भवतो राजवाहनस्येत्यर्थः । गतिं प्रचारप्रकारम् । प्रेक्षिष्यमाणः द्रक्ष्यन् । पुरस्य

उसका सारा अंग नवीन यौवनसे भरा था । उसकी आँखोंमें तेज था । उसकी सुन्दरता देखकर मेरा मन लुभा गया; धैर्य छूट गया और मैं कामबाणोंका लक्ष्य हो गया । उसका नाम बालचन्द्रिका था ।

(१२) वह चञ्चल बालकुरङ्गलोचना तरुणी थी । कामदेवके पुष्पबाणोंके सदृश अपने अपाङ्गोंसे मुझे बार-बार देखती हुई मन्द मन्द पवनसे कम्पित लताके समान काँपने लगी । प्रेम और लज्जा के मध्यमें रहनेवाले प्रत्यक्ष हाव–भावों तथा विभिन्न रीतिके भावों को दिखा दिखाकर उसने भी मुझसे अपनी मनोव्यथा प्रकट कर दी ।

(१३) मैं अपनी चतुरता तथा गुप्त चेष्टाओं द्वारा उस तरुणीके हार्दिक अनुरागको अच्छी तरह जान गया । उसके साथ समागमका यत्न सोचने लगा । दूसरे दिन मेरा मित्र

विहारवनं मया सहोपेत्य कस्मिंश्चिन्महीरुहे शकुन्तवचनानि शृण्वन्न-तिष्ठत्।

(१४) अहमुत्कलिकाविनोदपरायणो वनान्तरे परिभ्रमन्सरोवरतीरे चिन्ताक्रान्तचित्तां दीनवदनां मन्मनोरथैकभूमिं बालचन्द्रिकां व्यलोकयम्।

(१५) तस्याः ससंभ्रमप्रेमलज्जाकौतुकमनोरमं लीलाविलोकनसुख-मनुभवन्सुदत्या वदनारविन्दे विषण्णभावं मदनकदनखेदानुभूतं ज्ञात्वा तन्निमित्तं ज्ञास्यंल्लीलया तदुपकण्ठमुपेत्यावोचम्—'सुमुखि, तव मुखार-विन्दस्य दैन्यकारणं कथय' इति।

नगरस्योपान्ते समीपे विहारवनं क्रीडोद्यानम्। शकुन्तानां पक्षिणां वचनानि परस्पर-भाषितानि। 'शकुन्तपक्षिशकुनिशकुन्तशकुनद्विजाः' इत्यमरः।

(१४) उत्कलिकाया उत्कण्ठायाः विनोदेऽपनोदने परायणस्तत्परः। वनान्तरे अन्यवने। चिन्तया ध्यानेन आक्रान्तं पर्याकुलं चित्तं हृदयं यस्यास्ताम्। दीनवदनां विषण्णाननाम्। मम मनोरथस्याभिलाषस्यैकभूमिं प्रधानाश्रयभूताम्। यामहं निरन्तर-मभिलषामीति भावः।

(१५) सम्भ्रमेण त्वरया सह वर्तमानानि ससम्भ्रमाणि— प्रेमा अनुरागश्च लज्जा त्रपा च कौतुकमौत्सुक्यं चेति द्वन्द्वः। ससम्भ्रमाणि च तानीति कर्मधारयः तैर्मनोरमं मनोहरम्। लीलया विलासेन यद्विलोकनमवलोकनं तेन यत्सुखमानन्द-स्तत्। सुदत्या शोभना दन्ता यस्याः साः सुदती तस्या। मदनस्य कामस्य कदनखेदेन पीडनायासेन अनुभूतं विषण्णभावमित्यस्य विशेषणम्—अस्या विषण्णभावो नान्य-निमित्तकः किन्तु कामजनितपीडाहेतुक एवेति भावः। तस्य विषण्णभावस्य निमित्तं कारणम्। बालचन्द्रिकाया उपकण्ठं समीपम्।

बन्धुपाल नगरके बाहर एक उद्यानमें आपके अन्वेषणके लिए शुभ शकुन बताने आया। समीपमें ही एक वृक्षपर पक्षियोंके कलरवको सुनकर बैठ गया।

(१४) मैं अपनी बालचन्द्रिकाकी प्राप्तिकी उत्कण्ठाके विनोदार्थ दूसरे उपवनके सन्निकट एक तालाबके किनारे जा पहुँचा। वहाँ चिन्तितचित्त, म्लानमुख तथा एकमात्र मेरी प्राप्तिकी इच्छासे बैठी हुई एकान्तमें बालचन्द्रिका दिखायी पड़ी।

(१५) उस मनोहर दाँतोंवाली तरुणीकी घबराहट और प्रीति एवं लज्जायुक्त भावोंसे सुन्दर मुखके अवलोकनजन्य आनन्दको लूटता हुआ उसके विनोदयुक्त भाव तथा कामदेव की पीड़ासे व्यथित उसे जानकर उसकी उद्विग्नताका हेतु जाननेके विचारसे मैं उसके पास गया और मैंने पूछा—सुमुखी! आपके मुखकमलपर उदासी क्यों है इसका कारण मुझसे कहो।

(१६) सा रहस्यसंजातविश्रम्भतया विहाय लज्जाभये शनैरभाषत—'सौम्य, मानसारो मालवाधीश्वरो वार्धकस्य प्रबलतया निजनन्दनं दर्पसारमुज्जयिन्यामभ्यषिञ्चत् । स कुमारः सप्तसागरपर्यन्तं महीमण्डलं पालयिष्यन्निजपैतृष्वस्रेयावुद्दण्डकर्माणौ चण्डवर्मदारुवर्माणौ धरणीभरणे नियुज्य तपश्चरणाय राजराजगिरिमभ्यगात् ।

(१७) राज्यं सर्वमसपत्नं शासति चण्डवर्मणि दारुवर्मा मातुलाग्रजन्मनोः शासनमतिक्रम्य पारदार्यपरद्रव्यापहरणादिदुष्कर्म कुर्वाणो मन्मथसमानस्य भवतो लावण्यात्तचित्तां मामेकदा विलोक्य कन्यादूषणदोषं दूरीकृत्य बलात्कारेण रन्तुमुद्युङ्क्ते । तच्चिन्तया दैन्यमगच्छम्' इति ।

(१६) रहस्ये गोप्यविषये सञ्जात उत्पन्नो विश्रम्भो विश्वासो यस्यास्तस्या भावस्तया । वार्धकस्य वृद्धावस्थायाः जराया इति यावत् । प्रबलतया आधिक्येन । सप्त सागराः समुद्राः पर्यन्तः सीमान्तो यस्य तत् । महीमण्डलमित्यस्य विशेषणम् । निजपैतृष्वस्रेयौ–पितृस्वसुरपत्यं पुमानिति पैतृष्वस्रेयः, पितृभगिन्यास्तनयस्तौ । धरणीभरणे राज्यपालने । तपश्चरणाय तपस्यां कर्तुम् । राजराजगिरिं कैलासपर्वतं । राजराजः कुबेरस्तस्य गिरिः कैलासः । 'राजराजो धनाधिपः' इत्यमरः ।

(१७) असपत्नं निःशत्रुम् निष्कण्टकमिति यावत् । शासति पालयति सति । मातुलाग्रजन्मनोः दर्पसारचण्डवर्मणोः अतिक्रम्योल्लङ्घ्य । पारदार्यं परदाराभिमर्शः परद्रव्यापहरणं चौर्यं ते आदौ यस्य तत् । मन्मथसमानस्य कामसदृशस्य । लावण्येन सौन्दर्येणात्तं गृहीतं चित्तं हृदयं यस्यास्ताम् । कन्याया अपरिणीतायाः दूषणं घर्षणादि तदेव दोषस्तम् । दूरीकृत्य परिहृत्य । उद्युङ्क्ते चेष्टते ।

(१६) निर्जन प्रदेश होनेसे उसे अवसर प्राप्त हो गया और उसने लज्जा एवं भय छोड़कर धीरे-धीरे कहा—हे सौम्य ! मालवनाथ वृद्ध होनेके कारण राजपाटके कार्योंमें असमर्थ हो गये थे और इन्होंने राज्यसिंहासनपर अपने पुत्र दर्पसारको उज्जैनमें राज्याभिषेक करके आसीन कर दिया । कुमार दर्पसार इस सप्त-सागरा वसुन्धरापर शासनके विचार से अपने पिताकी बहनके दो धृष्ट पुत्रों (चण्डवर्मा और दारुवर्मा) को राज्य-शासन का भार सौंपकर कैलास पर्वतपर तप करने चला गया है ।

(१७) शत्रुहीन समस्त राज्यका शासन करते हुए चण्डवर्मा सुखसे रहने लगा । दारुवर्मा ममेरे भाई तथा अपने बड़े भाईकी आज्ञाओंका उल्लंघन करके परस्त्री अपहरण तथा परद्रव्यापहरण करता हुआ उपद्रव मचाने लगा । कामदेवके समान सुन्दर आपपर अनुरक्त मुझे ज्ञातकर वह एक दिन मेरे साथ बलात्कार करनेका यत्न करने लगा–कन्यारमणके पापका उसे ध्यानतक नहीं है । वह इस भयंकर पापको करनेपर उतारू होकर व्यभिचार करना चाहता है । इसी चिन्तासे मैं त्रस्त हूँ ।

(१८) तस्या मनोगतम् रागोद्रेकंमन्मनोरथसिद्धयन्तरायं च निशम्य बाष्पपूर्णलोचनां तामाश्वास्य दारुवर्मणो मरणोपायं च विचार्य वल्लभामवोचम् —'तरुणि, भवदभिलाषिणं दुष्टहृदयमेनं निहन्तुं मृदुरुपायः कश्चिन्मया चिन्त्यते । यक्षः कश्चिदधिष्ठाय बालचन्द्रिकां निवसति । तदाकारसंपदाशाशृङ्खलितहृदयो यः संवन्धयोग्यः साहसिको रतिमन्दिरे तं यक्षं निर्जित्य तथा एकसखीसमेतया मृगाक्ष्या संलापामृतसुखमनुभूय कुशली निर्गमिष्यति, तेन चक्रवाकसंशयाकारपयोधरा विवाहनीयेति सिद्धेनैकेनावादीति पुरजनस्य पुरतो भवदीयैः सत्यवाक्यैर्जनैरसकृत्कथनीयम् ।

(१८) तस्या बालचन्द्रिकायाः । मनोगतं अभिलाषम् । रागोद्रेकमनुरागातिरेकम् । मम मनोरथस्य सिद्धेरन्तरायं विघ्नं सर्वमेतन्निशम्येत्यस्य कर्म । बाष्पेति-साश्रुनयनामित्यर्थः । आश्वास्य सान्त्वयित्वा । वल्लभां प्रियां बालचन्द्रिकामिति यावत् । भवत्यास्तव अभिलाषिणमाकाङ्क्षिणम् । दुष्टं हृदयं यस्य तं दुर्जनमित्यर्थः । एनं दारुवर्माणम् । मृदुः कोमलः । अधिष्ठाय आविश्य आक्रम्येत्यर्थः । तदाकारेति तस्या बालचन्द्रिकायाः आकारसम्पदः सुन्दराकृतेराशया शृङ्खलितं बद्धं हृदयं यस्य सः । तद्रूपाकृष्टचित्त इत्यर्थः । सम्बन्धयोग्यः अनुरूपः । साहसिकः साहसं कर्तुं समर्थः । रतिमन्दिरे सुरतगृहे । निर्जित्य विजित्य । एकया एकमात्रया सख्या सहचर्या समेतया युक्तया । संलापामृतसुखं आलापजनितानन्दम् । कुशली अक्षतशरीरः । तेन तादृशेन पुरुषेण । चक्रवाकस्य संशयः सन्देहो यस्मिन् तादृश आकारः स्वरूपं ययोस्तादृशौ पयोधरौ कुचौ यस्याः सा । विवाहनीया परिणेया । इति इत्थम् । पुरजनस्य पुरतः—नागरिकान् प्रति । भवदीयैः भवत्पक्षीयैः । सत्यवाक्यैः प्रामाणिकैः ।

(१८) उस अंगनाके मनोगत भावोंको जानकर तथा अपने ऊपर उसका प्रगाढानुराग जानकर एवं अपने मनोरथमें दारुवर्माको विघ्नभूत जानकर मैंने उस दारुवर्माको मार डालनेकी युक्ति सोची, अपनी वल्लभाको आश्वासन देकर कहा—हे तरुणि ! तुम्हें चाहने वाले उस दुष्ट दारुवर्माकी हत्याके लिए मैं कोई सरल उपाय सोच रहा हूँ । अब तुम आज जाकर लोगोंसे यह कह दो कि मुझे सिद्ध तपस्वीने बताया है कि बालचन्द्रिकाके ऊपर कोई प्रेत रहता है । उसके लावण्य पर मुग्ध होकर जो कोई साहसी पुरुष उसके साथ रमणकी इच्छा रखता हो उसे चाहिये कि वह अपनी योग्यताका परिचय उसके रतिमन्दिर में जाकर देवे । रतिमन्दिरमें प्रेतको जीतकर तथा सखीके साथ बैठी हुई उस सुन्दरीके साथ वार्तालाप करके जो कुशलतासे निवृत्त होकर आवेगा उसीके साथ चकवाकके समान स्तनधारिणी बालचन्द्रिकाका विवाह होगा । अनेक बार नगरमें इस बातकी प्रसिद्धि कर

तदनु दारुवर्मा वाक्यानीत्थंविधानि श्रावंश्रावं तूष्णीं यदि भिया स्थास्यति तर्हि वरम्, यदि वा दौर्जन्येन त्वया सङ्गमङ्गीकरिष्यति, तदा स भवदीयैरित्थं वाच्यः—

(१९) 'सौम्य,दर्पसारवसुधाधिपामात्यस्य भवतोऽस्मन्निवासे साहसंकरणमनुचितम् । पौरजनसाक्षिकं भवन्मन्दिरमानीतया अनया तोयजाक्ष्या सह क्रीडन्नायुष्मान्यदि भविष्यति तदा परिणीय तरुणीं मनोरथान्निविश' इति । सोऽप्येतदङ्गीकरिष्यति । त्वं सखीवेषधारिणा मया सह तस्य मन्दिरं गच्छ । अहमेकान्तनिकेतने मुष्टिजानुपादाघातैस्तं रभसान्निहत्य पुनरपि वयस्यामिषेण भवतीमनु निःशङ्कंनिर्गमिष्यामि ! तदेनमुपायमङ्गीकृत्य विगतसाध्वसलज्जा भवज्जनकजननीसहोदराणां पुरत आवयोः

असकृत् पुनः पुनः । भिया भयेन । यदि वा पक्षान्तरे । दौर्जन्येन दुर्जन्येनतया हेतुना । त्वया सहेति शेषः सङ्गमासक्तिम् । अङ्गीकरिष्यति स्वीकरिष्यति । स दारुवर्मा । इत्थं वक्ष्यमाणम् । वाच्यः कथनीयः ।

(१९) दर्पसारवसुधाधिपस्य दर्पसारनृपतेरमात्यस्य मन्त्रिणः । अस्मन्निवासे अस्माकं गृहे । साहसकरणं साहसकार्यानुष्ठानम् । पौरजनाः साक्षिणो यस्मिंस्तद्यथा तथेति क्रियाविशेषणम् । पुरजनानां समक्षमित्यर्थः । भवतो मन्दिरं गृहम् । तोयजे कमले इवाक्षिणी यस्यास्तया । क्रीडन् विहरन् । आयुष्मान् कुशली । परिणीय विवाह्य । निर्विश उपभुङ्क्ष्व । सोऽपि दारुवर्माऽपि । एतद् यन्मयोक्तमिति भावः । त्वं बालचन्द्रिका । मया पुष्पोद्भवेनेत्यर्थः । तस्य दारुवर्मणः एकान्तनिकेतने निर्जने गृहे । मुष्ट्या जानुना पादेन च ये आघाताः प्रहारास्तैः । रभसाद् वेगात् । वयस्यामिषेण सखीव्याजेन । भवतीमनु तव पश्चात् । विगते अपगते साध्वसलज्जे भयत्रपे

देनी चाहिये । यदि दारुवर्मा इस बातसे भयान्वित हो जाय तो ठीक है । और यदि वह न मानें तथा उत्पात मचावे तो तुम्हारे घरके लोग उससे यह कह दें—

(१९) हे सौम्य! आप राजा दर्पसारके अमात्य हैं । हमारे गृहपर आपको ऐसा करना अनुचित है । नगरवासियोंके सामने इस पद्मलोचनाको अपने यहाँ ले जाकर यदि इससे रह सकें तो रहें और इसके साथ परिणय भी वहीं कर लें तथा मनोभिलाष पूर्ण करें । वह अवश्य इस बातको स्वीकार कर लेगा तब उस समय सखीके वेषमें मैं तुम्हारे साथ चलूँगा तुम मेरे साथ उसके यहाँ चलनेको राजी हो जाना । समय पाकर एकान्तमें मैं उसे मुक्कों-लातों-थप्पड़ों आदिके प्रहारोंसे मार डालूँगा । फिर उसी वेशमें तुम्हारी सखीके रूपमें बाहर चला आऊँगा । मेरी इस युक्तिको तुम स्वीकार कर लो और अपने जननी-जनक-

प्रेमातिशयमाख्याय सर्वथास्मत्परिणयकरणेताननुनयेः। तेऽपि वंशसंपल्लावण्याढ्याय यूने मह्यं त्वां दास्यन्त्येव। दारुवर्मणो मारणोपायं तेभ्यः कथयित्वा तेषामुत्तरमाख्येयं मह्यम्' इति।

(२०) सापि किञ्चिदुत्फुल्लसरसिजानना मामब्रवीत्—'सुभग, क्रूरकर्माणं दारुवर्माणं भवानेव हन्तुमर्हति। तस्मिन्हते सर्वथा युष्मन्मनोरथः फलिष्यति। एवं क्रियताम्। भवदुक्तं सर्वमहमपि तथा करिष्ये' इति मामसकृद्विवृत्तवदना विलोकयन्ती मन्दं मन्दमगारमगात्। अहमपि बन्धुपालमुपेत्य शकुनज्ञात्तस्मात् 'त्रिशद्दिवसानन्तरमेव भवत्सङ्गः संभविष्यति' इत्यशृणवम्। तदनु मदनुगम्यमानो बन्धुपालो निजावासं प्रविश्य मामपि निलयाय विससर्ज।

यस्याः सा। त्वमिति शेषः। प्रेम्णोऽनुरागस्य अतिशयमाधिक्यम्। सर्वथा सर्वप्रकारेण। तान् जनकादीन्। अनुनयेः प्रीणयेः। वंशसम्पदा कुलगौरवेण लावण्येन सौन्दर्येण चाढ्याय सम्पन्नाय। यूने तरुणाय। तेभ्यो जनकादिभ्यः। तेषामुत्तरं—ते एतद् सर्वं श्रुत्वा यद् कथयिष्यन्ति तत्। आख्येयं कथनीयम्।

(२०) किञ्चिदुत्फुल्लमीषद्विकसितं सरसिजं कमलमिवाननं वदनं यस्याः सा। सुभग सौम्येति सम्बोधनम्। युष्मन्मनोरथः मत्पाणिग्रहणरूपः। तथा—यथा भवतोपदिष्टम्। असकृत्पुनः पुनः। विवृत्तं परावृतं वदनं यया सा। पश्चात् स्थितं मामवलोकयितुमिति भावः। अगारं गृहम्। शकुनज्ञात् निमित्तज्ञानकुशलात्। तस्मात् बन्धुपालाद्। भवत्सङ्गः भवता सह मिलनम्। मदनुगम्यमानः मया अनुक्रियमाणः। निजावासं स्वगृहम्। निलयाय (मम) निलयं गन्तुम्। निलयो गृहम्। विससर्ज विसृष्टवान् प्रेषयामासेति यावद्।

भाई आदिसे अपनी प्रगाढ़ प्रीतिका वृत्त सुनाकर हम लोगोंमें विवाह हो जाय ऐसी विनती करो। वे लोग तुम्हारी विनयपर तथा मेरी कुलीनता और सौन्दर्यपर प्रसन्न हो जायेंगे और तुम्हारा विवाह मेरे साथ कर देंगे। उन लोगोंसे दारुवर्माके मारनेकी युक्ति भी बतला दो और मेरी इस युक्तिपर जो उनके विचार हों वे भी मुझे बतला देना।

(२०) यह सुनकर उसने मुखकमलको विकसित करके कहा—हे सुभग! उस क्रूरकर्मी दारुवर्माको आप ही मार सकते हैं। आप यदि उस दुराचारीको मार डालें तो सभी मनोकामनाएँ आपकी पूर्ण होवें। इसी रीतिपर सब कार्य आप करें। मैं भी आपके आदेशानुसार सारे कार्य कर दूँगी। ऐसा कहकर वह विकसित नयनोंसे मुझे अनेकबार अवलोकन करती हुई वहाँसे चली गयी। मैं भी वहाँसे लौटकर शकुनज्ञ बन्धुपालके समीप आया तथा उसने शुभ शकुन देखकर मुझसे कहा—तीस दिवसोंके पश्चात् आपके सहयो-

(२१) मन्मायोपायवागुरापाशलग्नेन दारुवर्मणा रतिमन्दिरे रन्तुं समाहूता बालचन्द्रिका तं गमिष्यन्ती दूतिकां मन्निकटमभिप्रेषितवती । अहमपि मणिनूपुरमेखलाकङ्कणकटकताटङ्कहारक्षौमकज्जलं वनितायोग्यं मण्डनजातं निपुणतया तत्तत्स्थानेषु निक्षिप्य सम्यगङ्गीकृतमनोज्ञवेषो वल्लभया तया सह तदागारद्वारोपान्तमगच्छम् ।

(२२) द्वाःस्थकथितास्मदागमनेन सादरं विहिताभ्युद्गतिना तेन द्वारोपान्तनिवारिताशेषपरिवारेण मदन्विता बालचन्द्रिका संकेतागार-

(२१) मन्मायेति —मम मायया कपटेन य उपायः स एव वागुरापाशो बन्धनरज्जुस्तत्र लग्नो बद्धस्तेन । मया तस्य विनाशार्थं ये कपटोपाया रचितास्तान् लङ्घितुमसमर्थेनेति भावः । तं तत्समीपम् । गमिष्यन्ती प्रस्थास्यमाना । मणिनूपुरो मञ्जीरः, मेखला रशना, कङ्कणकटके वलयभेदौ, ताटङ्कं कर्णभूषणं, हारो मुक्तासरः, क्षौमं दुकूलम्, कज्जलमञ्जनञ्चतत्सर्वं पादादिभूषणम् । वनितायोग्यं स्त्रीजनोचितम् । निपुणतया कौशलेन । तत्तत्स्थानेषु तत्तदङ्गेषु । निक्षिप्य परिधाय । सम्यग् निपुणं यथा स्यात्तथा अङ्गीकृतः स्वीकृतो धृत इति यावत्, मनोज्ञो मनोरमो वेषो येन सः । स्त्रीवेषं विधृत्येत्यर्थः । वल्लभया प्रियया । तया बालचन्द्रिकया । तदागारेति—तस्य दारुवर्मणः आगारद्वारस्य गृहद्वारस्य उपान्तं समीपम् ।

(२२) द्वाःस्थेति—द्वास्थैर्दौवारिकैः कथितं विज्ञापितं अस्माकमागमनं यस्मै तेन । विहिता कृता अभ्युद्गतिरभ्युत्थानं येन तेन । दारुवर्मणा । द्वारोपान्ते द्वारसमीपे निवारिता रुद्धाः अशेषा निखिलाः परिवाराः परिजना येन तेन । मदन्विता मया अन्विता—मद्गुरोर्वर्त्तिनीत्यर्थः । संकेतागारं पूर्वनिर्दिष्टस्थानम् । अनीयत नीता । अनी-

गियोंका आपसे सम्मिलन होने का योग है । तत्पश्चात् मेरे पीछे-पीछे बन्धुपाल वहाँसे आया और वह अपने घर गया तथा मुझे भी अपने घर जानेकी अनुमति दी ।

(२१) मेरे युक्तिरूपी मायाजालके पाशोंमें बँधकर वह दारुवर्मा बालचन्द्रिकाके साथ रमण करनेके लिए रतिमन्दिरमें उद्यत हो गया तथा उसने उसे वहाँपर बुलाया । जब वह जानेको तैयार हो गयी तब अपनी एक दासी द्वारा उसने मुझे बुलवाया । मैं भी वनिताओंके अनुरूप आभूषणोंसे पूर्णरूपेण अलंकृत हो गया अर्थात्—रत्नजटित नूपुर, करधनी, कंकण, बिजायठ, कनफूल, हार, कण्ठा आदि पहनकर एवं आंखोंमें काजल लगाकर बढ़िया रेशमी वस्त्र धारणकर अपनी सखी बालचन्द्रिकाके साथ मनोज्ञ वेषसे दारुवर्माके विहारमन्दिरके द्वारतक पहुँचा ।

(२२) दारुवर्माको द्वारपरसे अपने आनेकी सूचना संकेतसे दे दी । इसपर दारुवर्मा ने खड़े होकर भीतर-बाहर तथा द्वारके इधर-उधरके लोगोंको वहाँसे हटा दिया । तत्-

मनीयत । नगरव्याकुलां यक्षकथां परीक्षमाणो नागरिकजनोऽपि कुतूहलेन दारुवर्मणः प्रतीहारभूमिमगमत् ।

(२३) विवेकशून्यमतिरसौ रागातिरेकेण रत्नखचितहेमपर्यङ्के हंसतूलगर्भशयनमानीय तरुणीं तस्यै मह्यं तमिस्रासम्यगनवलोकितपुंभावाय मनोरमस्त्रीवेषाय च चामीकरमणिमयमण्डनानि सूक्ष्माणि चित्रवस्त्राणि कस्तूरिकामिलितं हरिचन्दनं कपूरसहितं ताम्बूलं सुरभीणि कुसुमानीत्यादिवस्तुजातं समर्प्य मुहूर्तद्वयमात्रं हासवचनैः संलपन्नतिष्ठत् ।

यतेति णीञ् प्रापणे इत्यस्य धातोः कर्मणि लङ् । द्विकर्मकत्वाच्च बालचन्द्रिकेत्यत्र मुख्ये कर्मणि प्रथमा । नगरव्याकुलां पुरव्याप्ताम् । परीक्षमाणः सत्या न वेति निर्धारयन् । प्रतीहारभूमिं द्वारदेशम् ।

(२३) विवेकेन सदसद्विचारेण शून्या रहिता मतिर्बुद्धिर्यस्यासौ । असौ दारुवर्मा । रागातिरेकेण अनुरागातिशयेन । रत्नैर्मणिभिः खचितः स्यूतः यो हेम्नः सुवर्णस्य पर्यङ्कः खट्वा तस्मिन् । हंसवत् स्वच्छस्तूलः हंसतूलः, स गर्भेऽभ्यन्तरे यस्य तादृशं शयन शय्याम् । आनीय आरोप्य । तरुणीमिति शेषः । तस्यै तरुण्यै बालचन्द्रिकायै । मह्यं स्त्रीवेषधारिणे पुष्पोद्भवायेत्यर्थः । तमिस्रेति—तमिस्रायां तमस्यां रात्रौ सम्यक् स्पष्ट अनवलोकितः अदृष्टः पुम्भावः पुरुषभावो यस्य तस्मै । मनोरमः सुन्दरः स्त्रीवेषो यस्य तस्मै । विशेषणद्वयमेतत् मह्यमित्यस्य सम्प्रदाने चतुर्थी । चामीकरमणिमयानि सुवर्णरत्नविकाराणि मण्डनानि भूषणानि । सूक्ष्माणि श्लक्ष्णानि । चित्रवस्त्राणि मनोरमवासांसि । कस्तूरिकामिलितं मृगमदवासितम् । हरिचन्दनं गन्धद्रव्यविशेषः सुरभीणि सुगन्धीनि । वस्तुजातं द्रव्यसमूहम् । समर्प्य दत्त्वा । हासवचनैः हास्ययुक्तवाक्यैः । संलपन् आलापं कुर्वन् ।

दरवाज़े मेरे आगे चलती हुई बालचन्द्रिका सहित मुझे भीतर ले गया । मुख्य फाटकपर व्याकुल नागरिकोंकी भीड़ एकत्र थी —यह ज्ञात करनेके लिए कि प्रेत क्या करता है !

(२३) विवेक शून्यमतिवाले दारुवर्माने मैथुनकी प्रबलेच्छासे उस बालचन्द्रिकाको मणियोंसे जड़ित एक सुवर्णके पलंगपर बिठाया । जिसपर हंसके पंखोंके भरे गद्दे बिछे थे । पुनः रातमें मुझे (मैं पुरुष हूँ ऐसा न पहचानकर) और मेरी सखीको अर्थात्—मनोहर दोनों रमणियोंको अनेक प्रकारके आभूषण, महीन कपड़े, कस्तूरीमिश्रित चन्दन, कर्पूरसे सुवासित ताम्बूल (पान), सुगन्धित पुष्प तथा इत्र आदि पदार्थ भेंट किये । फिर दो घड़ी तक हास-परिहास करते वहींपर बैठा रहा ।

(२४) ततो रागान्धतया सुमुखीकुचग्रहणे मतिं व्यधत्त । रोषारुणितोऽहमेनं पर्यङ्कतलान्निःशङ्को निपात्य मुष्टिजानु पादघातैःप्राहरम् । नियुद्धरभसविकलमलंकारं पूर्ववन्मेलयित्वा भयकम्पितां नताङ्गीमुपलालयन्मन्दिराङ्गणमुपेतः साध्वसकम्पित इवोच्चैरकूजमहम्—'हा, बालचन्द्रिकाधिष्ठितेन घोराकारेण यक्षेण दारुवर्मा निहन्यते । सहसा समागच्छत । पश्यतेमम्' इति ।

(२५) तदाकर्ण्य मिलिता जनाः समुद्यद्बाष्पा हाहानिनादेन दिशो बधिरयन्तः 'बालचन्द्रिकामधिष्ठितं यक्षं बलवन्तं शृण्वन्नपि दारुवर्मा

(२४) तत इति । रागेण कामजनितविषयाभिलाषेण अन्धतया मत्ततया । हेतौ तृतीया । सुमुख्याः सुवदनायाः बालचन्द्रिकायाः कुचयोः स्तनयोः ग्रहणे पीडने । मतिं बुद्धिम् अभिलाषमिति यावत् । व्यधत्त अकरोत् । रोषेण क्रोधेन अरुणितः रक्तवर्णः । अहं वक्ता पुष्पोद्भव इत्यर्थः । एनं दारुवर्माणम् । पर्यङ्कतलात् खट्वायाः । मुष्टे जानुनोः पादयोश्च घातैः प्रहारैः । नियुद्धेति—नियुद्धस्य बाहुयुद्धस्य रभसेन वेगेन विकलं विपर्यस्तम् । अलङ्कारं भूषणम् । मया धृतमिति शेषः । पूर्ववत् प्रागिव । मेलयित्वा यथास्थानं निवेश्य भयकम्पितां भयेन कम्पवतीम् । नताङ्गीं बालचन्द्रिकाम् । उपलालयन् आश्वासयन् सान्त्वयन् वा । मन्दिरस्य दारुवर्मगृहस्य अङ्गणं चत्वरम् । उपेत उपगतः प्राप्त इत्यर्थः । साध्वसेन भयेन कम्पित इव न तु सत्यमेव कम्पित इति भावः । उच्चैरकूजम्— उच्चैः स्वरेण आक्रन्दम् । आक्रन्दनस्य प्रकारमाह—हेत्यादि—हा इति खेदसूचकमव्ययम् । बालचन्द्रिकाम् अधिष्ठितः आक्रम्य स्थितः तेन । घोरो भयङ्करः आकारः स्वरूपं यस्यासौ तेन सहसा सत्वरम् ।

(२५) मिलिताः तत्र सम्मिलिता उपस्थिता इति यावत् । समुद्यद् उद्गच्छद् बाष्पं नेत्रजलं येषां ते । हाहानिनादेन हाहेति शब्देन । दिशः काष्ठाः । द्वितीयाबहु-

(२४) फिर कामपीड़ासे मतवाला वह अन्ध होकर उस सुमुखिके स्तनोंको ग्रहण करनेको उद्यत हुआ । उसकी इस हरकतपर मुझे क्रोध आ गया । निश्शंक होकर मैंने लाल लाल आँखें करके उसे उठाकर पलंगके नीचे पटक दिया और घूसों लातोंके प्रहारोंसे मार डाला । लड़ाईमें मेरे अलंकार अव्यवस्थित हो गये थे उन्हें व्यवस्थित करके भयसे काँपनेवाली उस सखीको प्रीतिसे सान्त्वना देकर मन्दिरके आँगनमें आ पहुँचा । तब भयसे घबरायी हुई आवाजमें मैं चिल्लाने लगा । 'हा, हा, गजब हो गया । बालचन्द्रिकाके सिरपर रहनेवाला भयंकर प्रेत दारुवर्माको मारे डालता है । दौड़ो लोगो, दौड़ो, जल्दी आओ, इस प्रे[त]को मारो ।

(२५) मेरी इस चिल्लाहटको सुनकर आँखोंमें आँसुओंको भरे हुए हाहाकार ध्वनिसे दिशाओंको बहिरी करते हुए लोग परस्पर कहने लगे 'इस दारुवर्माके लिए प्रलाप हु[आ]

मदान्धस्तामेवायाचत। तदसौ स्वकीयेन कर्मणा निहतः। किं तस्य विलापेन' इति मिथो लपन्तः प्राविशन्। कोलाहले तस्मिन्नटुललोचनया सह नैपुण्येन सहसा निर्गतो निजावासमगाम्।

(२६) ततो गतेषु कतिपयदिनेषु पौरजनसमक्षं सिद्धादेशप्रकारेण विवाह्य तामिन्दुमुखीं पूर्वसंकल्पितान्सुरतविशेषान्यथेष्टमन्वभूवम्। बन्धुपालशकुननिर्दिष्टे दिवसेऽस्मिन्निर्गत्य पुराद्बहिर्वर्तमानो नेत्रोत्सवकारि भवदवलोकनसुखमप्यनुभवामि' इति।

(२७) एवं मित्रवृत्तान्तं निशम्याम्लानमानसो राजवाहनः स्वस्य च

वचनस्य रूपम् बधिरयन्तः इत्यस्य कर्म। बधिरयन्तः बधिरा इव कुर्वन्तः—अन्यशब्दग्रहणेऽसमर्थाः कुर्वन्त इति यावत्—उच्चैराक्रोशन्त इति भावः : बधिरयन्त इति नामधातो रूपम्। शृण्वन्नपि जानन्नपि। मदान्धः मदगर्वितः। तामेव बालचन्द्रिकामेव। स्वकीयेन कर्मणा स्वदोषेण। मिथः परस्परम्। लपन्तः कथयन्तः। कोलाहले कलकले सञ्जाते इति शेषः। चटुले चपले लोचने यस्यास्तया। बालचन्द्रिकयेत्यर्थः। नैपुण्येन दक्षतया। सहसा सत्वरम्।

(२६) पौरजनानां नागरिकाणां समक्षं सम्मुखे। सिद्धस्य सिद्धपुरुषस्यादेशः कथनं तस्य प्रकारस्तेन। यथा सिद्धेनादिष्टं तथैवेत्यर्थः। पूर्वसंकल्पितान् प्रागेव मनस ईप्सितान्। सुरतविशेषान् क्रीडाविशेषान्। यथेष्टं यथाभिलाषम्। अन्वभूवम्—अनुभूतवान् अहमिति शेषः। बन्धुपालस्य तदाख्यमित्रस्य शकुनेन शुभसूचकेन निर्दिष्टे कथिते। पुरात् नगरात्। बहिः बहिःप्रदेशे। नेत्रोत्सवकारि नयनानन्दजनकम्। भवतः तव राजवाहनस्येति शेषः। अवलोकनस्य दर्शनस्य सुखमानन्दम्।

। यद्यपि यह मदान्ध पूर्वसे ही जानता था कि बालचन्द्रिकाके सिरपर प्रेत रहता है। फिर भी इसने न माना और अपने ही कुकृत्यसे यह फल भोगा—अपने ही काले कृत्यसे यह मारा गया। अब क्यों खेद करें।' ऐसा कहते हुए ये लोग अन्दर प्रविष्ट हुए। उसी कोलाहलवाले समुदायमें मैं भी उस चंचल नयनीके साथ चालाकी से बाहर आकर अपने वासस्थानको चला आया।

(२६) कुछ दिवसों के व्यतीत होने के पश्चात् उस तपस्वीके बताये हुए तरीकेसे मैंने उस चन्द्रमुखीके साथ विवाह कर लिया। पूर्व संकल्पित मनोभिलाषोंको यथेच्छापूर्वक भोगा—उसके साथ नाना प्रकारके भोग-विलास किये। फिर बन्धुपालके द्वारा उपदेशित शकुनसे आज नगरके बाहर आ गया और नयनाभिराम आपके दर्शनकर सुख का अनुभव किया।

(२७) इस प्रकारसे मित्रके वृत्तान्तको श्रवणकर राजवाहनका चित्त प्रमुदित हो गया था उसने अपने और सोमदत्त के चरितोंको भी [illegible]

सोमदत्तस्य च वृत्तान्तमस्मै निवेद्य सोमदत्तम् 'महाकालेश्वराराधनानन्तरं भवद्वल्लभां सपरिवारां निजकटकं प्रापय्यागच्छ' इति नियुज्य पुष्पोद्भवेन सेव्यमानो भूस्वर्गायमाणमवन्तिकापुरं विवेश। तत्र 'अयं मम स्वामिकुमारः' इति बन्धुपालादये बन्धुजनाय कथयित्वा तेन राजवाहनाय बहुविधां सपर्यां कारयन्सकलकलाकुशलो महीसुरवर इति पुरि प्रकटयन्पुष्पोद्भवोऽमुष्य राज्ञो मज्जनभोजनादिकमनुदिनं स्वमन्दिरे कारयामास।

इति श्रीदण्डिनः कृतौ दशकुमारचरिते पुष्पोद्भवचरितं नाम चतुर्थ उच्छ्वासः।

—०—

अस्मै पुष्पोद्भवाय। महाकालेश्वरस्य उज्जयिनीस्थमहादेवस्याराधनस्य पूजायाः अनन्तरं पश्चात्। भवतस्तव। सोमदत्तस्येति शेषः। वल्लभां पत्नीम्। सपरिवारां सपरिजनाम्। निजकटकं स्ववसतिम्। प्रापय्य नीत्वा। नियुज्य आदिश्य सोमदत्तमिति शेषः। भूस्वर्गेति–भुवि पृथिव्यां स्वर्गं इवाचरदिति भूस्वर्गायमाणं=स्वर्गतुल्यमित्यर्थः। स्वामिकुमारः प्रभुपुत्रः। बन्धुपाल आदिर्यस्य तस्मै। तेन बन्धुजनेन=प्रयोज्यकर्त्रा। सपर्यां पूजाम्। सकलासु कलासु विद्यासु कुशलः पटुः महीसुरवरः द्विजश्रेष्ठः। इति एतत्। पुरि नगरे। प्रकटयन् प्रकाशयन्। राजवाहनस्य नृपत्वं गोपयन्निति भावः मज्जनभोजनादिकं स्नानाशनादिकम्। अनुदिनं प्रतिदिवसम्। स्वमन्दिरे निजगृहे पुष्पोद्भवस्येति शेषः।

इति श्रीताराचरणभट्टाचार्यकृतायां बालविबोधिनीसमाख्यायां दशकुमारचरितव्याख्यायां चतुर्थ उच्छ्वासः।

—०—

कहा—अपनी पत्नी तथा कुटुम्बी जनोंको महाकालके पूजनके पश्चात्, यथास्थान पहुँचाकर, शीघ्र मेरे पास आओ। इस रीतिसे सोमदत्तको आदेश देकर राजवाहन, पुष्पोद्भवके साथ-साथ भूमण्डलपर स्वर्गके सदृश सुन्दर अवन्तिकापुरीमें आया। वहां आनेपर पुष्पोद्भवने अपने मित्रों बन्धुपाल आदिसे कहा—ये मेरे स्वामिपुत्र हैं। इस बातको सुनकर उन लोगोंने अनेक प्रकारके पदार्थोंके द्वारा राजवाहनका स्वागत सत्कार किया तथा पूजन किया। अपने नगरमें राजवाहनका परिचय कराते हुए लोगोंसे कहा—ये समस्त कलामें प्रवीण ब्राह्मण हैं—ऐसा कहकर राजवाहनको नगरवासियोंसे गुप्त रखा। फिर अपने इस राजमन्दिरमें उसे स्नान भोजन नित्य कराने लगा तथा सुखसे निवास करने लगा।

इस प्रकारसे चतुर्थोच्छ्वासकी बालक्रीड़ा नामक हिन्दी टीका समाप्त हुई।

पञ्चमोच्छ्वासः

(१) अथ मीनकेतनसेनानायकेन मलयगिरिमहीरुहनिरन्तरावासिभुजङ्गमभुक्तावशिष्टेनेव सूक्ष्मतरेण धृतहरिचन्दनपरिमलभरेणेव मन्दगतिना दक्षिणानिलेन वियोगिहृदयस्थं मन्मथानलमुज्ज्वलयन्, सहकारकिसलयमकरन्दास्वादनरक्तकण्ठानां मधुकरकलकण्ठानां काकलीकलकलेन दिक्चक्रं वाचालयन्, मानिनीमानसोत्कलिकामुपनयन्, माकन्दसिन्दुवार-

---

(१) अथेति । अथानन्तरं वसन्तसमयः समाजगामेत्यग्रिमेणान्वयः । मीनेति—मीनकेतनस्य कामस्य सेनायाः सैन्यस्य नायकः प्रधानवीरः सेनापतिरित्यर्थः, तेन । मलयानिलस्य अत्यन्तकामोद्दीपकत्वान्नायकत्वमुक्तम् । मलयगिरेर्मलयपर्वतस्य महीरुहेषु वृक्षेषु निरन्तरं निरवच्छिन्नं निबिडमिति यावत्, आवासिनां वासं कुर्वतां भुजङ्गमानां सर्पाणां भुक्तस्य खादितस्यावशिष्टेन अतिरिक्तेनेव, अत एव सूक्ष्मतरेण मन्दतरेण । भुजङ्गमानां पवनाशनत्वाद् यावान् वायुर्मलयाच्चलितस्तस्य प्रचुरोंऽशस्तैः खादितस्ततोऽवशिष्टः अत एव मन्दतर इति भावः । मन्दतरत्वे हेतुरुत्प्रेक्षितः । धृतेति—धृतः स्वीकृतः हरिचन्दनस्य वृक्षविशेषस्य परिमलभर आमोदातिशयो येन तेनेव मन्दगतिना धीरेण । भाराक्रान्तत्वं मन्दगतित्वे हेतुः स चोत्प्रेक्षितः । गृहीतभारस्य मन्दगतित्वञ्च स्वभावसिद्धम् । दक्षिणानिलेन मलयवायुना करणेन । वियोगिनां विरहिणां हृदयेषु चित्तेषु तिष्ठतीति वियोगिहृदयस्थं विरहिहृद्गतम् । मन्मथानलं कामाग्निम् । उज्ज्वलयन् उद्दीपयन् - उज्ज्वलयन्नित्यादि शत्रन्तपदादि वसन्तसमय इत्यस्य विशेषणानि, सहकारेति—सहकाराणामाम्रतरूणां किसलयमकरन्दयोः पल्लवपुष्परसयोः स्वादनेन भक्षणेन रक्तो मधुररागयुक्त इति यावत् कण्ठस्वरो येषां तेषाम् । मधुकरा भ्रमराश्च कलकण्ठाः कोकिलाश्च ते तेषाम् । काकलीकलकलेन काकलीकोलाहलेन । दिशां चक्रं मण्डलम् । वाचालयन् मुखरयन् । मानिनीनां मानवतीनां मानसस्य मनस उत्कलिकामुत्कण्ठाम् । उपनयन् प्रापयन् । माकन्दः सहकारश्च सिन्दुवारो निर्गुण्डी च रक्ताशोकश्च किंशुकः पलाशश्च तिलकस्तिल-

---

(१) अनन्तर कुछ समय बाद वसन्त ऋतु आकर उपस्थित हो गयी जिसका सेनाधिप स्वयं मीनकेतन कामदेव था । मलय पर्वतपरके चन्दनके वृक्षोंपर निवास करनेवाले साँपोंके पीनेसे अवशिष्ट तथा चन्दनकी सुगन्धसे मिश्रित पवन शनैः-शनैः चलता हुआ दक्षिण पवन के साथ विरहियोंके अन्तःकरणोंमें कामोद्दीपन कर रहा था । आमकी मञ्जरियोंके परागोंका आस्वादन कर लाल कण्ठवाले कोकिलोंकी मधुर ध्वनिसे तथा भ्रमरोंकी गुंजारोंसे कामदेव ने दिशाओंको मुखरित कर दिया था और मानिनी अंगनाओंके हृदयोंको उत्कण्ठित कर दिया था । आम, निर्गुण्डी, रक्ताशोक, पलाश तथा तिलकादि वृक्षोंको अंकुरित करके

रक्ताशोककिंशुकतिलकेषु कलिकामुपपादयन्, मदनमहोत्सवाय रसिकमनांसि समुल्लासयन्, वसन्तसमयः समाजगाम।

(२) तस्मिन्नतिरमणीये कालेऽवन्तिसुन्दरी नाम मानसारनन्दिनी प्रियवयस्यया बालचन्द्रिकया सह नगरोपान्तरम्योद्याने विहारोत्कण्ठया पौरसुन्दरीसमवायसमन्विता कस्यचिच्चूतपोतकस्य छायाशीतले सैकततले गन्धकुसुमहरिद्राक्षतचीनाम्बरादिनानाविधेन परिमलद्रव्यनिकरेण मनोभवमर्चयन्ती रेमे।

(३) तत्र रतिप्रतिकृतिमवन्तिसुन्दरीं द्रष्टुकामः काम इव वसन्तसहायः पुष्पोद्भवसमन्वितो राजवाहनस्तदुपवनं प्रविश्य तत्र-तत्र-मलयमा-

---

वृक्षश्च ते तेषु। कलिकां कोरकम्। उपपादयन् जनयन्। मदनमहोत्सवाय मदनमहोत्सवार्थम्। रसिकानां कामिजनानां मनांसि मानसानि। उल्लासयन् उत्साहयन्।

(२) तस्मिन् पूर्वोक्ते। काले वसन्त इत्यर्थः। मानसारस्य तदाख्यमालवेश्वरस्य नन्दिनी कन्या। अवन्तिसुन्दरीति नामधेया। प्रियवयस्यया प्रियसख्या। नगरस्योपान्ते सीमायां यद् रम्यं मनोहरमुद्यानमुपवनं तत्र। विहारार्थं क्रीडार्थमुत्कण्ठया व्याकुलतया। पुरे भवाः। पौराश्च ताः सुन्दर्यस्तासां पौराङ्गनानां समवायेन मण्डलेन समन्विता युक्ता। चूतपोतकस्य शिशुसहकारस्य। छायया शीतलं तस्मिन्। सैकततले सिकतामयप्रदेशे। गन्धश्चन्दनं, कुसुमं पुष्पं, हरिद्रा, अक्षतास्तण्डुलाः, चीनाम्बरं सूक्ष्मवस्त्रं इत्यादिनानाविधेन अनेकप्रकारेण। परिमलद्रव्यनिकरेण गन्धद्रव्यसमूहेन। मनोभवं कामम्। रेमे चिक्रीड।

(३) तत्र तस्मिन् समये। रतेः कामपत्न्याः प्रतिकृतिः प्रतिमा ताम्। वसन्तः सहायो यस्य स वसन्तद्वितीय इत्यर्थः। मलयेति—मलयमारुतेन दक्षिणानिलेन

मदनमहोत्सव मनानेके निमित्त कामदेवने रसिकोंके हृदयोंमें एक विशेष रीतिका उल्लास का दिया। इस तरहसे वसन्त काल जब आ पहुँचा तब—

(२) ऐसी सुखदायी ऋतुमें राजा मानसारकी कन्या अवन्तिसुन्दरी अपनी प्रिय सहचरी बालचन्द्रिकाके साथ विहार करनेकी अभिलाषासे नगरके समीप उपवनमें आयी। उसके साथ नगरकी महिलायें भी थीं। उस उपवनमें आकर उसने एक छोटे आमके वृक्षके नीचे, रोरी, चन्दन, फल, फूल, हल्दी, अक्षत तथा चीनदेशीय रेशमी वस्त्रोंके द्वारा सुगन्धित द्रव्योंके सहित विधिवत् आनन्दके साथ कामदेवका पूजन किया और क्रीड़ा करने लगी—सखियोंसे विनोद करने लगी।

(३) कामदेवके समान मनोज्ञ राजवाहन भी पुष्पोद्भवके साथ उसी समय कामदेवकी पत्नी के समान मनोहर अवन्तिसुन्दरीको देखने जब वहाँपर आ गये तब ऐसा मालूम

रुतान्दोलितशाखानिरन्तरसमुद्भिन्नकिसलयकुसुमफलसमुल्लसितेषु रसालतरुषु कोकिलकीरालिकुलमधुकराणामालापाञ्श्रावंश्रावं किञ्चिद्विकसदिन्दीवरकह्लारकैरवराजीवराजीकेलिलोलकलहंससारसकारण्डवचक्रवाकचक्रवालकलरवव्याकुलविमलशीतलसलिलललितानि सरांसि दर्शंदर्शं मन्दलीलया ललनासमीपमवाप ।

(४) बालचन्द्रिकया 'निःशङ्कमित आगम्यताम्' इति हस्तसंज्ञया समाहूतो निजतेजोजितपुरुहूतो राजवाहनः कृशोदर्या अवन्तिसुन्दर्या अन्तिकं समाजगाम ।

आन्दोलितासु कम्पितासु शाखासु निरन्तरं निरवच्छिन्नं समुद्भिन्नैर्विकसितैः किसलयकुसुमफलैः पल्लवपुष्पफलैः समुल्लसितेषु शोभितेषु । रसालतरुषु आम्रवृक्षेषु । कोकिलेति—कोकिलाः पिकाश्च कीराः शुकाश्च अलिकुलं भ्रमरसमूहश्च मधुकरा भ्रमराश्च ते तेषाम् । आलापान शब्दान् । श्रावं श्रावं वारं वारं श्रुत्वा । आभीक्ष्ण्ये णमुल् किञ्चिदिति—किञ्चिदीषद् विकसन्तीषु प्रस्फुटन्तीषु इन्दीवराणां, कह्लाराणां सौगन्धिकानां, कैरवाणां कुमुदानां राजीवानां कमलानां च राजीषु श्रेणिषु केलिलोलाः क्रीडासक्ता ये कलहंसाः कादम्बाः सारसाः पुष्कराह्वाः कारण्डवा मद्गवः—(मद्गुः कारण्डवः प्लव इत्यमरः) चक्रवाकाश्चक्राह्वाश्च तेषां यच्चक्रवालं मण्डलं तस्य कलरवेण अव्यक्तमधुरध्वनिना व्याकुलानि व्याप्तानि विमलानि स्वच्छानि शीतलानि शिशिराणि यानि सलिलानि जलानि तैर्ललितानि मनोरमाणि । सरांसि सरोवराणि दर्शं दर्शं वारं वारं दृष्ट्वा । अत्रापि पूर्ववण्णमुल् । ललनासमीपं अवन्तिसुन्दरीनिकटम् । अवाप प्राप्तवान् राजवाहन इति शेषः ।

(४) निःशङ्कं निर्भयम् । हस्तसंज्ञया करचेष्टया । समाहूत आकारितः । निजतेजसा स्वप्रतापेन निर्जितः पराजितः पुरुहूत इन्द्रो येन सः । कृशमुदरं यस्याः सा कृशोदरी तस्याः क्षीणमध्याया इत्यर्थः ।

होता था, मानो वसन्तके साथ कामदेव अपनी स्त्री रतिको देखने आया हो। मलय पवनके झोकोंसे झूमते और नवीन-नवीन कोंपलोंके पुष्पोंके, और फलोंके भारसे दबे आमों के पेड़ोंपर बैठी कोयलों और सुग्गों की ध्वनियों तथा भ्रमरोंकी सुरीली तानोंसे कर्णोंको सुख देते हुए एवं अधखिले नीले तथा सफेद कमलों-कुमुदिनियों और साधारण पद्मोंपर केलि करते हुए राजहंस, सारस, चक्रवाकोंके समुदायके मधुर-मधुर गानोंसे व्याकुल निर्मल तथा शीतल जलवाले तालाबोंकी शोभाको बार बार निरखते हुए वे लोग अवन्तिसुन्दरीके समीप जा पहुँचे ।

(४) दूरसे ही बालचन्द्रिकाने हाथके संकेतसे राजवाहनको पुकारकर कहा—निडर होकर चले आइये । उसके इशारेपर अपने तेजसे इन्द्रको पराजित करनेवाले राजवाहन उस

(५) या वसन्तसहायेन समुत्सुकतया रतेः केलीशालभञ्जिकाविधित्सया कञ्चन नारीविशेषं विरच्यात्मनः क्रीडाकासारशारदारविन्दसौन्दर्येण पादद्वयम् उद्यानवनदीर्घिकामत्तमरालिकागमनरीत्या लीलालसगतिविलासम्, तूणीरलावण्येन जङ्घे, लीलामन्दिरद्वारकदलीलालित्येन मनोज्ञमूरुयुगम्, जैत्ररथचातुर्येण घनं जघनम्, किञ्चिद्विकसल्लीलावतंसकह्लारकोरककोटरानुवृत्त्या गङ्गावर्तसनाभि नाभिम्, सौधारोहणपरि-

---

(५) या अवन्तिसुन्दरी निर्मितेव रराजेत्यग्रिमेणान्वयः । वसन्तः सहायो यस्य तेन कामेनेत्यर्थः । समुत्सुकतया रत्यर्थमुत्कण्ठिततया । रतेः स्वपत्न्याः । केली क्रीडा तदर्थं या शालभञ्जिका कृत्रिमपुत्रिका तस्या विधित्सा निर्मातुमिच्छा तया । कञ्चनेति अनिर्वचनीयमित्यर्थः । विरच्य निर्माय । आत्मनः स्वस्य । क्रीडाकासारे विहारसरसि यत् शारदं शरत्कालसम्बन्धि अरविन्दं कमलं तस्य सौन्दर्येण कान्त्या । कासारारविन्देति पाठान्तरम् । तत्र सारं सारभूतं यदरविन्दमित्यर्थः । तेन पादद्वयं चरणयुगलं नारीविशेषस्येति शेषः । विधायेत्यग्रिमेणान्वयः । एवमग्रेऽपि सर्वत्र । उद्यानवने उपवने या दीर्घिका वापी तस्यां या मत्तमरालिका हंसी तस्या गमनरीतिर्गतिपरिपाटी तया । लीलया विलासेनालसं मन्दं गतिविलासं गमनप्रकारम् । मरालवन्मन्दगमनेति भावः । तूणीरौ इषुधी तयोर्लावण्येन सौन्दर्येण जङ्घे — तूणाकारं जङ्घाद्वयमित्यर्थः । लीलामन्दिरस्य मदनक्रीडागृहस्य द्वारे या कदली रम्भातरुस्तस्या लालित्येन सौन्दर्येण जैत्रो जयनशीलो रथो जैत्ररथः कामस्येति शेषः । तस्य चातुर्येण निर्माणपरिपाट्या । घनं निविडम् । किञ्चिदीषद् विकसन् प्रस्फुटन् लीलावतंसः विलासकर्णभूषणं यः कह्लारकोरकः सौगन्धिककलिका तस्य कोटरमध्यदेशस्त-

---

कृशोदरी अवन्तिसुन्दरीके सन्निकट जाकर उपस्थित हो गये ।

(५) अवन्तिसुन्दरीकी शोभा उस समय निम्नरीत्या थी । जैसे कामदेवने अपनी प्रिया रति देवीके क्रीडनार्थ एक पुत्तलिका रची हो—उस पुत्तलिकाके बनानेमें कामदेवने ऐसी दक्षता की कि उसके दोनों चरण उसने अपने क्रीडासरोवरके शरत्कालिक कमलोंकी शोभासे निर्मित किये—अर्थात् उसके दोनों पैर शारदीय कमलके सदृश थे । अपनी वाटिकाकी बावलीमें मदोन्मत्ता होकर भ्रमणशीला हंसिनीकी गतिसे उसकी अलसायी चाल रची-वह अलसाकर हंसकी चालसे चलनेवाली थी । उसकी दोनों जाँघें अपने तूणीर (तरकस) की छविके सदृश बनायीं । अपने लीलामन्दिरके दरवाजेपर लगे हुए केलोंकी छटाको एकत्र कर दोनों घुटने रचे तथा जैत्ररथकी कान्तिसे युक्त उसके जघनस्थल । कामदेवकी स्त्री रतिके कानोंमें अलंकृत कमलोंकी कलिकाके समान शोभाशाली थोड़े-थोड़े विकसित लीलावतंस कर्णभूषण । गङ्गाजीके आवर्त (भौंरों) के समान गंभीर उसकी नाभि रची । ऊपर

पाटचा बलित्रयम्, मौर्वीमधुकरपङ्क्तिनीलिमलीलया रोमावलिम्, पूर्णसुवर्णकलशशोभया कुचद्वन्द्वम्, (लतामण्डपसौकुमार्येण बाहू), जयशङ्खाभिख्यया कण्ठम् कमनीयकर्णपूरसहकारपल्लवरागेण प्रतिबिम्बीकृतबिम्बं रदनच्छदम्, बाणायमानपुष्पलावण्येन शुचि स्मितम्, अग्रदूतिकाकलकण्ठिकाकलालापमाधुर्येण वचनजातम्, सकलसैनिकनायकमलयमारुतसौरभ्येण निःश्वासपवनम्, जयध्वजमीनदर्पेण लोचनयुगलम्,

स्यानुवृत्त्या सादृश्येन । गङ्गाया आवर्तो भ्रमिस्तस्य सनाभि सदृशम् । आरुह्यतेऽनेनेति आरोहणम् । करणे ल्युट् । सौधस्य प्रासादस्य यदारोहणं सोपानं तस्य परिपाटचा अनुक्रमेण । सोपानपङ्क्तितुल्यं वलित्रयमित्यर्थः । मौर्वी ज्येव मधुकरपङ्क्तिः रोलम्बमाला तस्या यो नीलिमा नैल्य तस्य लीलया सौन्दर्येण रोमावलिं रोमपङ्क्तिम् । पूर्णो जलपूर्णो य. सुवर्णकलशः स्वर्णघटस्तस्य शोभया कान्त्या कुचद्वन्द्वं स्तनयुगम् । कुचौ तस्याः कामस्य द्वारदेशस्थितशुभसूचककनककलशाकारावित्यर्थः । लतामण्डपस्य सौकुमार्येण कोमलतया बाहू हस्तद्वयम् । जयशङ्खस्याभिख्यया शोभया कण्ठं ग्रीवाम् । सा कम्बुग्रीवेति भावः । कमनीयः सुन्दरो यः कर्णपूरः कर्णभूषणीभूतः सहकारपल्लवो रसालकिसलयं तस्य रागेण रक्तिम्ना, प्रतिबिम्बीकृतं प्रतिबिम्बवत्कृत बिम्बं बिम्बफलं येन तादृशं, यत्पूर्वं बिम्बमासीत्तदेवास्या अधरनिर्माणादनन्तर प्रतिबिम्बं जातमित्यर्थः । प्रसिद्धबिम्बफलापेक्षयाऽप्यस्या अधरोष्ठयो रागोऽधिक इति तात्पर्यम् । रदनच्छदमोष्ठम् । बाणवदाचरतीति बाणायमान यत् पुष्पं तस्य लावण्येन सौन्दर्येण । शुचि शुभ्रम । स्मितं हास्यम । अग्रदूतिका प्रथमदूती कामस्येति शेषः । या कलकण्ठिका कोकिलवधूस्तस्या यः कलो मधुर आलापो ध्वनिस्तस्य माधुर्येण मधुरतया । वचनजातं वाक्यसमूहम् । सकलसैनिकानां निखिलभटानां कामस्येति शेषः । नायको नेता सेनापतिरिति यावत् यो मलयमारुतो मलयवायुस्तस्य सौरभ्येण सौगन्ध्येन । निःश्वासपवनं श्वासवायुम् । जयसूचको ध्वजो

अट्टालिकापर चढ़नेके लिए सोपान (सीढ़ियों) के सदृश उसकी त्रिवली । धनुषके ऊपर मँडराते भ्रमरावलिकी कालिमासे सुशोभित रोमावली । पूर्ण स्वर्णकलशकी छविको धारण करनेवाले उसके कुचद्वय बनाये । लतामण्डपकी शोभाके समान उसके दोनों हाथ रचे । जयशंखकी ग्रीवाके समान उसका कण्ठ । सुन्दर कनफूलके ऊपर रखी हुई आम्रमंजरीकी कालिमाके सदृश एवं पके कुंदरू (बिम्बा फल) के समान लाल-लाल उसके ओंठ । बाणोंके समान आकारवाले फूलोंकी शोभाके समान सुंदर मुसकान तथा पहले-पहल प्रेषित की जानेवाली कामदूतिका (अर्थात् कोयल) की वाणीके समान मधुर उसकी वाणी तथा कामदेवकी समस्त सेनाके सेनापति मलय पवनकी सुगन्धिसे उसके श्वासोच्छ्वास एवं जय-

चापयष्टिश्रिया भ्रूलते, प्रथमसुहृदः सुधाकरस्यापनीतकलङ्कया कान्त्या वदनम्, (लीलामयूरबर्हभङ्ग्या केशपाशं) च विधाय समस्तमकरन्द-कस्तूरिकासम्मितेन मलयजरसेन प्रक्षाल्य कर्पूरपरागेण सम्मृज्य निर्मितेव रराज।

(६) सा मूर्तिमतीव लक्ष्मीर्मालवेशकन्यका स्वेनैवाराध्यमानं सङ्कल्पितवरप्रदानायाविर्भूतं मूर्तिमन्तं मन्मथमिव तमालोक्य मन्दमारुतान्दोलिता लतेव मदनावेशवती चकम्पे। तदनु क्रीडाविश्रम्भान्निवृत्ता

जयध्वजस्तथाभूतो यो मीनो मत्स्यस्तस्य दर्पेणाहङ्कारेण। मीनाकारं नयनयुगमिति भावः। चापयष्टिर्धनुर्लता तस्याः श्रिया कान्त्या। वक्रे भ्रूलते इत्यर्थः। प्रथमसुहृदः प्रधानमित्रस्य कामस्येति शेषः। अपनीतो दूरीकृतः कलङ्को लाञ्छनं यस्यास्तया। निष्कलङ्कसुधाकरसदृशं वदनमिति भावः। लीलार्थो मयूरः लीलामयूरः क्रीडामयूरः कामस्येति शेषः। तस्य बर्हं पिच्छं तस्य भङ्ग्या रचनया—तत्सदृशमिति भाव। केशपाशं केशकलापम्। विधाय कृत्वा। समस्ताभ्यामेकीकृताभ्यां मकरन्द-कस्तूरिकाभ्यां पुष्परसमृगमदाभ्यां संमितेन युक्तेन मिलितेनेत्यर्थः। मलयजरसेन चन्दन-द्रवेण प्रक्षाल्य आर्द्रीकृत्य। कर्पूरपरागेण कर्पूरचूर्णेन। संमृज्य सर्वतः समीकृत्य। निर्मितेव रचितेव कामेनेति शेषः।

(६) मूर्तिमतीव शरीरिणीव, साक्षादित्यर्थः। स्वेनैव स्वयमेव। आराध्यमान-मुपास्यमानम्, अत एव सङ्कल्पितवरप्रदानाय सङ्कल्पितस्य अभिलषितस्य अवन्ति-सुन्दर्येति शेषः। वरस्य प्रदानाय प्रदानार्थमाविर्भूतमुपस्थितम्। तं राजवाहनम्। मन्दमारुतेन धीरसमीरेणान्दोलिता कम्पिता। मदनस्य कामस्यावेश आविर्भाव-स्तद्वती। चकम्पे यथा समीरसम्पर्केण लता कम्पिता भवति तथा सापि कामावेश-वशात् कम्पिताऽभवत्। एतेन तस्या राजवाहने रतिरुत्पन्नेति ज्ञायते, सात्त्विकभा-वस्य कम्पनस्यानुभावरूपत्वात्। तदनु एतदवस्थाप्राप्त्यनन्तरम्। क्रीडायां विश्रम्भो

सूचिका पताकामें बनी मीनाकार (मछलीके समान) उसकी दोनों आँखें निर्मित कीं। उसकी भृकुटियाँ अपने धनुषके समान तिरछी तथा अपने मित्र चन्द्रमाकी निष्कलंक छवि के समान उसका सुन्दर मुख और क्रीडा करनेवाले अपने मयूरके समान उसके केशपाश रचकर एवं सभी तरहकी सुगन्धियोंसे-कस्तूरी-कपूर-चन्दन आदिसे मिश्रित जलसे उसे नहला-धुलाकर पुनः कपूरके चूर्णसे (सुगन्धित पाउडरसे) उसकी देह सजा दी—ऐसी सुन्दरी वह, इस समय दीख रही थी।

(६) मानो साक्षात् मूर्तिमती लक्ष्मी, सुन्दरीके समान मालवनाथकी पुत्री अपने ही द्वारा उपास्यमान तथा पूर्वसंकल्पित वरप्रदानार्थ आए हुए साक्षात् मूर्तिमान कामदेव के समान सुन्दर राजवाहनको देखकर कामवशीभूता होकर मन्द-मन्द बहती हवासे

लज्जया कानि कान्यपि भावान्तराणि व्यधत्त ।

(७) 'ललनाजनं सृजता विधात्रा नूनमेषा घुणाक्षरन्यायेन निर्मिता । नो चेदब्जभूरेवंविधो निर्माणनिपुणो यदि स्यात्तर्हि तत्समानलावण्यामन्यां तरुणीं किं न करोति' इति सविस्मयानुरागं विलोकयतस्तस्य समक्षं स्थातुं लज्जिता सती किञ्चित्सखीजनान्तरितगात्रा तन्नयनोभिमुखैः किञ्चिदाकुञ्चितैरञ्चितभ्रूलतैरपाङ्गवीक्षितैरात्मनः कुरङ्गस्यानायमानलावण्यं

विश्वासोऽनुरागविशेषस्तस्मात् । कानि कान्यपि अनिर्वचनीयानीत्यर्थः । भावान्तराणि तदवस्थासमुचितान् नानाभावान् ।

(७) ललनाजनमित्यादि न करोतीत्यन्तं विलोकयतः इत्यस्याः क्रियायाः कर्म । न करोतीत्येतत्पर्यन्ता राजवाहनस्य चिन्ता । एषा अवन्तिसुन्दरी । घुणाक्षरन्यायेन काकतालीयसंयोगन्यायेन । घुणः प्रसिद्धः काष्ठकीटो यदृच्छया 'काष्ठं भिन्दन् सञ्चरति —तथा तस्य सञ्चारेण काष्ठे कदाचिदक्षराकाराणि चिह्नानि जायन्ते । अयमेव घुणाक्षरन्यायः । यथा घुणः अविदित्वैव अक्षराणि निर्माति तथैव इयमपि अविदितैव विधातृहस्तान्निर्गता । नो चेत्—अन्यथा । अब्जाद्भवतीति अब्जभूर्ब्रह्मा । एवंविधाया अवन्तिसुन्दरीसदृश्या निर्माणे सृष्टौ निपुणः कुशलः । तस्याः समानं तुल्यं लावण्यं सौन्दर्यं यस्यास्ताम् । अन्यामपराम् । किं कथम् । सविस्मयानुरागं विलोकयत इति क्रियाया विशेषणम् विस्मयेनानुरागेण चेत्यर्थः । तस्य राजवाहनस्य । समक्षं पुरस्तात् । किञ्चिदीषत् सखीजनेन सहचर्या अन्तरितं व्यवहितं गात्रं शरीरं यस्याः सा तथाभूता । तस्य राजवाहनस्य नयनयोर्नेत्रयोरभिमुखैः सम्मुखवर्त्तिभिः किञ्चिदाकुञ्चितैरीषत्संक्षिप्तैः । अञ्चिते शोभिते भ्रूलते यैस्तैः । अपाङ्गवीक्षितैः कटाक्षैः । आत्मनः कुरङ्गस्य कुरङ्गभूतस्य आत्मनः इत्यर्थः । आनायो जालं तदिवाचरतीति आनायमानं लावण्यं यस्येति विग्रहः । यथा कश्चिद् आनाये कुरङ्गं बध्नाति

काँपती हुई लताके सदृश काँपने लगी । फिर लज्जाके कारण उसने अपनी सखियोंके साथ-खेलना बन्द कर दिया तथा न मालूम एक ओर बैठकर क्या क्या सोच-विचार करने लगी ।

(७) उसकी ऐसी प्रतिमा देखकर ऐसा ज्ञात हुआ कि, जब महादेव, सृष्टिमें स्त्रियोंकी रचना करने लगे तब घुणाक्षरन्यायसे यह सुन्दरी बन गयी, अन्यथा इसके समान और स्त्रियाँ क्यों नहीं उन्होंने रचीं ! यदि वे ऐसी रचना कर सकनेमें प्रवीण होते, तब न करते ! यह तो धोखेसे बन गयी, ब्रह्माजीने जानकर नहीं रची । नहीं तो और तरुणियाँ वे अवश्य बनाते । आश्चर्य और प्रीतिपूर्वक बार-बार राजवाहनको अवलोकित करनेवाली वह राजकुमारी वहाँपर अधिक न बैठ सकी । बल्कि कुछ दूर हटकर अपनी सखियोंके पीछे आड़में होकर राजवाहनकी ओर भ्रुकुटियोंसे देखती हुई बैठी । उस समय उसे ऐसा

राजवाहनं विलोकयन्त्यतिष्ठत्।

(८) सोऽपि तस्यास्तदोत्पादितभावरसानां सामग्र्या लब्धबलस्येव विषमशरस्य शरव्यायमाणमानसो बभूव।

(९) सा मनसीत्थमचिन्तयत्—'अनन्यसाधारणसौन्दर्येणानेन कस्यां पुरि भाग्यवतीनां तरुणीनां लोचनोत्सवः क्रियते। पुत्ररत्नेनामुना पुरन्ध्रीणां पुत्रवतीनां सीमन्तिनीनां का नाम सीमन्तमौक्तिकीक्रियते। कास्य देवी। किमत्रागमनकारणमस्य। मन्मथो मामपहसितनिजलावण्य-मेनं विलोकयन्तीमसूययेवातिमात्रं मथ्नन्निजनाम सान्वयं करोति। किं

तथा राजवाहनः स्वलावण्येन अवन्तिसुंदरीं समाचकर्षेति इति भावः।

(८) सोऽपि राजवाहनोऽपि। तस्या अवन्तिसुन्दर्याः। तदा तस्मिन् काले उत्पादिता जनिता ये भावा विकारास्त एव रसास्तेषां सामग्र्या समग्रतया पूर्णतये-त्यर्थः लब्धं प्राप्तं बलं सामर्थ्यं येन तस्य। अन्योऽपि रसायनोपयोगाल्लब्धबलो भवतीति प्रसिद्धमेव। विषमा अयुग्मसंख्यकाः पञ्च शरा बाणा यस्य तस्य, कामस्ये-त्यर्थः। शरव्यं लक्ष्यं तदिवाचरत् शरव्यायमाणं मानसं यस्य सः। सोऽपि तदा मद-नबाणवेध्यो बभूवेत्यर्थः।

(९) अनन्यसाधारणम् अद्वितीयं सौन्दर्यं यस्य तेन। पुरि नगर्याम्। लोच-नोत्सवो नयनानन्दः। कुत्रायं निवसतीति भावः। पुत्रेषु रत्नमिव, पुत्रश्रेष्ठ इत्यर्थ-स्तेन। सीमन्तिनीनां कामिनीनां मध्ये सीमन्तमौक्तिकीक्रियते शिरोभूषणीक्रियते। या खल्वस्य जननी सा तु सर्वसीमन्तिनीनां शिरोमणिरिति भावः। देवी महिषी। अपहसितं उपहासविषयं कृतं निजं स्वकीयं लावण्यं सौन्दर्यं कामस्येति शेषः येन तम्। एनमित्यस्य विशेषणम्। असूयया अक्षमया। मथ्नन् पीडयन्। निजनाम

मालूम होता था कि राजवाहनके कटाक्ष विक्षेप उस हिरणी (अवन्तिसुन्दरी) को फंसाने के लिये जाल बिछा रहे हैं और उसी मोहजालमें वह फंस गयी—अर्थात् राजवाहनकी शोभा खूब देखने लगी।

(८) कुमार राजवाहनका चित्त भी अवन्तिसुन्दरीके भावमय रसोंसे—कटाक्षविक्षेपों से—वर्धित होकर कामदेवके बाणोंसे विद्ध हो गया।

(९) वह अपने मनमें सोचने लगी—ये अनन्यसाधारण शोभाशाली राजकुमार किस पुरकी सौभाग्यवती नारीके होंगे जो इन्हें देखकर प्रमुदित होंगी। वे रमणियाँ धन्य होंगी जो इन्हें देखकर नेत्र सफल करती होंगी। वह धन्य-धन्य पुत्रवती है जिसने इन्हे पुत्ररूपमें प्राप्त किया है। अवश्य ही वह अंगना सर्वश्रेष्ठ होगी जो इन्हें पुत्र कहकर आन-न्दित होती होगी। न जाने इनकी वल्लभा कौन है? ये इस उपवनमें क्यों आए? हा, वह मन्मथ भी इनके सौन्दर्यसे निर्जित ईर्ष्याके साथ देखनेवाली मुझ कुमारीको मथता है तथा

करोमि कथमयं ज्ञातव्य' इति।

(१०) ततो बालचन्द्रिका तयोरन्तरङ्गवृत्तिं भावविवेकैर्ज्ञात्वा कान्तासमाजसन्निधौ राजनन्दनोदन्तस्य सम्यगाख्यानमनुचितमिति लोकसाधारणैर्वाक्यैरभाषत—'भर्तृदारिके, अयं सकलकलाप्रवीणो देवतासान्निध्यकरण आहवनिपुणो भूसुरकुमारो मणिमन्त्रौषधिज्ञः परिचर्यार्हो भवत्या पूज्यताम्' इति।

(११) तदाकर्ण्य निजमनोरथमनुवदन्त्या बालचन्द्रिकया सन्तुष्टान्तरङ्गा तरंगावली मन्दानिलेनेव सङ्कल्पजेनाकुलीकृता राजकन्या जितमारं कुमारं समुचितासनासीनं विधाय सखीहस्तेन शस्तेन गन्धकुसुमाक्ष-

---

मन्मथेति स्वनाम सान्वयं सार्थकम्।

(१०) तयोरवन्तिसुन्दरीराजवाहनयोः। अन्तरङ्गवृत्तिं मनोवृत्तिम्। भावानां मानसविकाराणां विवेकैर्विज्ञानैः। राजनन्दनोदन्तस्य राजवाहनवृत्तान्तस्य। सम्यगाख्यानं विशेषेण कथनम्। लोकसाधारणैः लौकिकैः। भर्तृदारिके! प्रभुपुत्रि! राजनन्दिनीत्यर्थः सकलासु कलासु नृत्यगीतादिषु प्रवीणः कुशलः। देवतानां सान्निध्यं साक्षात्कारं करोतीति तथा मन्त्रादिसाधनज्ञ इत्यर्थः। आहवनिपुणो युद्धकुशलः। परिचर्यार्हः सत्कारयोग्यः।

(११) निजमनोरथमनुवदन्त्या स्वाभिलाषानुरूपं कथयन्त्या। तरङ्गावली कल्लोलमाला। सङ्कल्पजेन मनोभवेन। जितोः विजितो मारः कन्दर्पो येन तम्। शस्तेन प्रशस्तेन मनोहारिणा वस्तुनिचयेनेत्यस्य विशेषणम्। नूनं निश्चयेन। एषा

अपना मन्मथ नाम सार्थक करता है, क्या करूँ, कैसे जान सकूँ कि ये कौन व्यक्ति है।

(१०) उस कुमारी बालचन्द्रिकाने उन दोनों की अङ्गवृत्तियोंसे यह जान लिया कि उनके मनमें अनुराग उत्पन्न हो गया है। परन्तु स्त्रीसमुदायमें यह बात उसने प्रकट न की क्योंकि, ऐसा करना उसे योग्य न मालूम पड़ा कि वह उन सबके समक्ष उनका परिचय देती। अर्थात् राजवाहनको राजकुमार-रूपमें भी कहना उसने वहाँ ठीक न समझा। वार्तालापके प्रसंगमें उसने बताया कि, हे अवन्तिसुन्दरी! ये (राजवाहन) मणि-मन्त्र औषध के परिज्ञाता हैं तथा समस्त कलाओंमें प्रवीण हैं और देवताओंसे साक्षात्कार करनेमें अति दक्ष हैं साथ ही विप्रसुत भी हैं। अतः आप इनकी पूजा करें—क्योंकि ये आपसे पूजार्ह हैं।

(११) राजकुमारी अवन्तिसुन्दरी इस बातपर अति हर्षित हुई तथा अपनी मनोनुकूल बातको बालचन्द्रिकासे सुनकर जैसे वायु के मन्द पड़नेसे जलाशयोंकी तरंगें क्षीण हो जाती हैं वैसे ही उसकी बातोंको सुननेसे कामतरंगोंसे व्यथित राजकुमारीका अन्तःकरण क्षीण

तघनसारताम्बूलादिनानाजातिवस्तुनिचयेन पूजां तस्मै कारयामास । राजवाहनोऽप्येवमचिन्तयत्—'नूनमेषा पूर्वजन्मनि मे जाया यज्ञवती । नो चेदेतस्यामेवंविधोऽनुरागो मन्मनसि न जायेत । शापावसानसमये तपोनिधिदत्तं जातिस्मरत्वमावयोः समानमेव । तथापि कालजनितविशेष-सूचकवाक्यैरस्या ज्ञानमुत्पादयिष्यामि' इति ।

(१२) तस्मिन्नेव समये कोऽपि मनोरमा राजहंसः केलीनिधित्सया तदुपकण्ठमगमत् । समुत्सुकया राजकन्यया मरालग्रहणे नियुक्तां बालचन्द्रिकामवलोक्य समुचितो वाक्यावसर इति सम्भाषणनिपुणो राजवाहनः सलीलमलपत्—'सखि, पुरा शाम्बो नाम कश्चिन्महीवल्लभो मनोवल्लभया सह विहारवाञ्छया कमलाकरमवाप्य तत्र कोकनदकदम्बसमीपे निद्राधीन-

---

अवन्तिसुंदरी । जाया पत्नी । शापावसानसमये—यदा शापस्य समाप्तिर्भविष्यति तदा । तपोनिधिना तापसेन येन पूर्वं शापो दत्तस्तेन दत्तं विहितम् । जातिस्मरत्वं पूर्वजन्मस्मरणम् । कालेन दीर्घसमयेन जनित उत्पादितो यो विशेषस्तस्य सूचकानि प्रकाशकानि यानि वाक्यानि तैः ।

(१२) तस्या अवन्तिसुन्दर्या उपकण्ठं समीपम् । समुचितो. योग्यः । वाक्यावसरः अस्मिन्नेव समये किञ्चिद्वक्तव्यमित्यर्थः । महीवल्लभो राजा । मनोवल्लभया स्वप्रियया । कमलाकरं सरोवरम् । कोकनदानां रक्तोत्पलानां कदम्बं समूहस्तस्य समीपे । निद्राधीनमानसं निद्रया आक्रान्तम् । बिसगुणेन मृणालतन्तुना । तस्य

(सन्तुष्ट) हुआ और कामदेवको जीतनेवाले राजवाहनको योग्य आसन पर बैठाया तथा सखियोंके हाथोंसे गन्ध, पुष्प, माला, चन्दन, कपूर, ताम्बूल आदि विविध प्रकारकी वस्तुओंसे पूजा करायी । कुमार राजवाहनने अपने मनमें विचार किया—यह कुमारी पूर्व जन्ममें अवश्य ही मेरी भार्या यज्ञवती थी यदि वह न होती तो मेरे मनमें इतना प्रेमांकुर न उत्पन्न होता । यद्यपि पूर्व जन्ममें मुनिप्रदत्त शापके अन्तमें मुनिका वरदान था कि हम लोगोंको पूर्ववृत्तकी स्मृति रहेगी । वे बातें भी इसमें घटती हैं, मुझमें और इस कुमारीमें समान भावसे पूर्व जन्म की स्मृति है तथापि मैं बात-चीतके सिलसिलेमें इसे पूर्व जन्मकी स्मृति दिलाना उचित समझता हूँ । क्योंकि हम लोगोंमें यह ज्ञान बहुत दिनोंके पश्चात् आया है—न इसके दर्शन होते न ज्ञान उत्पन्न होता ।

(१२) इतनेमें ही क्रीड़ा करते-करते एक मनोहर राजहंस हंसिनोके पीछे-पीछे अवन्तिसुंदरीके पास आ गया । जिसे देखकर राजकुमारी उत्सुक हो गयी और बालचन्द्रिकाको उसे पकड़नेके लिए भेजा । वार्तालापमें प्रवीण राजवाहनने एकान्त पाकर बात करनेका

मानसं राजहंसं शनैर्गृहीत्वा बिसगुणेन तस्य चरणयुगलं निगडयित्वा कान्तामुखं सानुरागं विलोकयन्मन्दस्मितविकसितैककपोलमण्डलस्तामभाषत—'इन्दुमुखि, मया बद्धो मरालः शान्तो मुनिवदास्ते । स्वेच्छयानेन गम्यताम्' इति ।

(१३) सोऽपि राजहंसः शाम्बमशपत्—'महीपाल, यदस्मिन्नम्बुजखण्डेऽनुष्ठानपरायणतया परमानन्देन तिष्ठन्तं नैष्ठिकं मामकारणं राज्यगर्वेणावमानितवानसि तदेतत्पाप्मना रमणीविरहसन्तापमनुभव' इति । विषण्णवदनः शाम्बो जीवितेश्वरीविरहमसहिष्णुर्भूमौ दण्डवत्प्रणम्य सविनयमभाषत—'महाभाग, यदज्ञानेनाकरवं तत्क्षमस्व' इति । स तापसः

हंसस्य । निगडयित्वा बद्ध्वा । मन्दस्मितेन ईषद्धसितेन विकसितं प्रफुल्लमेकं कपोलमण्डलं गण्डस्थलं यस्य सः । तां स्वकान्ताम् । अनेन हंसेन ।

(१३) अम्बुजखण्डे कमलसमुदाये । अनुष्ठाने ध्यानादिकरणे परायणः प्रवृत्तः तस्य भावस्तया । नैष्ठिकं ब्रह्मचारिणम् । अवमानितवान् अवज्ञातवान् । पाप्मना पापेन अपराधेनेति यावत् । रमण्या दयिताया विरहस्य विच्छेदस्य सन्तापं क्लेशम् । असहिष्णुः सोढुमशक्नुवन् । करुणया आकृष्टं चेतो यस्य सः दयापरवशचित्तः । शापफलाभावः—शापस्य फलं न भविष्यतीत्यर्थः । अमोघतया अव्यर्थतया । भाविनी

उचित समझकर बात-चीत छेड़ दी । उन्होंने लीलापूर्वक कहा—हे प्रिये ! प्राचीन कालमें शाम्ब नामका एक महीपति अपनी जायाके साथ जलविहार करनेकी अभिलाषासे एक सरोवरके तटपर गया । वहाँपर कमलोंके मध्यमंडलमें सोता हुआ एक राजहंस दीख पड़ा । उसे पकड़कर उसने धीरेसे उसके चरणोंमें कमलदण्डका सूत्र बाँध दिया । प्रेमसे प्रफुल्लित कपोलमण्डल करके अपनी प्रियतमाके मुखको मन्दस्मितके साथ देखकर बोला—हे चन्द्रमुखि ! मैंने इस राजहंसको बाँध दिया है । यह मुनिके समान स्थिरचित्त हो गया है । अच्छा अब इसे छोड़ ही देता हूँ ! यह चाहे जहाँ विचरे । यह कहकर उसने उसे छोड़ दिया ।

(१३) उस राजहंसने राजा शाम्बको उसी समय शाप दिया कि, हे राजन् ! इस कमलवनमें राजहंसके रूपमें मैं परब्रह्मके ध्यानमग्न समाधिस्थ था और परमानन्द सुख-भोग रहा था । ऐसे नैष्ठिक तथा निरपराधी मुनिका राज्यमदसे अपमान तुमने स्व-प्रियाके अनुरंजनार्थ किया है अतः इस अपराधका दण्ड तुम्हें अपनी 'भार्याका वियोग' भोगना पड़ेगा । इसपर राजाका मुख म्लान हो गया और अपनी प्रियाके विरहको सहन करनेमें असक्त होकर उसने ऋषिवरके चरण छुए तथा प्रार्थना की कि, हे महाभाग ! अज्ञानवश मुझसे यह अपराध हो गया, कृपया क्षमा करें । करुणार्द्रचित्त उन तपस्वीने राजा शाम्बसे कहा—हे राजन् ! मेरी वाणी सत्य है अतः तुम्हें यह शाप इस जीवनमें न होकर अन्य

करुणाकृष्टचेतास्तमवदत्—'राजन्, इह जन्मनि भवतः शापफलाभावो भवतु । मद्वचनस्यामोघतया भाविनि जनने शरीरान्तरं गतायाः अस्याः सरसिजाक्ष्या रसेन रमणो भूत्वा मुहूर्तद्वयं मच्चरणयुगलबन्धकारितया मासद्वयं शृङ्खलानिगडितचरणो रमणीवियोगविषादमनुभूय पश्चादनेककालं वल्लभया सह राज्यसुखं लभस्व' इति ।

(१४) तदनु जातिस्मरत्वमपि तयोरन्वगृह्णात् । 'तस्मान्मरालबन्धनं न करणीयं त्वया' इति । सापि भर्तृदारिका तद्वचनाकर्णनाभिज्ञातस्वपुरातनजननवृत्तान्ता 'नूनमयं मत्प्राणवल्लभः' इति मनसि जानती रागपल्लवितमानसा समन्दहासमवोचत् "सौम्य, पुरा शाम्बो यज्ञवतीसन्देशपरिपालनाय तथाविधं हंसबन्धनमकार्षीत् । तथा हि लोके पण्डिता अपि दाक्षिण्येनाकार्यं कुर्वन्ति' इति । कन्याकुमारावेवमन्योन्यपुरातनजनन-

---

भविष्यति । जनने जन्मनि । (जनुर्जननजन्मानि जनिरुत्पत्तिरुद्भव इत्यमरः) । शरीरान्तरङ्गतायाः अन्यदेहं प्राप्तायाः । रसेन अनुरागेण । रमणो वल्लभः । मुहूर्तेति—त्वया तु मुहूर्त्तद्वयमेव मच्चरणयुगलस्य बन्धनं कृतं तेन पुनर्मासद्वयं तत्फलं त्वया भोक्तव्यमित्यर्थः । शृङ्खलया निगडितौ बद्धौ चरणौ यस्य सः । अनेककालं दीर्घकालं यावत् ।

(१०) अन्वगृह्णात् अनुज्ञातवान् । तद्वचनस्य राजवाहनवाक्यस्य आकर्णनेन श्रवणेन अभिज्ञातः स्मृतः स्वपुरातनजननस्य निजपूर्वजन्मनो वृत्तान्तो यया सा । रागेणानुरागेण पल्लवितं प्रफुल्लं मानसं यस्याः सा । दाक्षिण्येन परच्छन्दानुरोधेन । अकार्यमनुचितम् । कन्याकुमारौ अवन्तिसुन्दरीराजवाहनौ । एवमित्थम् । अन्यो-

---

जीवनमें अवश्य प्राप्त होगा । उस समय तुम दोनोंको इस जीवनकी स्मृति भी बनी रहेगी तथा मुझे दो मुहूर्त बाँधा है अत तुम्हें दो मास शृङ्खलाबद्ध होकर रमणीवियोग अवश्य सहना पड़ेगा । तत्पश्चात् उस रमणीके साथ अति कालतक राज्यसुख भोगोगे ।

(१४) फिर तुरत ही उन तपस्वीने एक और वरदान देकर कहा—'जाओ तुम लोगोंको जाति-स्मरत्व' रहे (पूर्वजन्मकी बात याद रहे) । अतः हे राजपुत्री ! आपसे कहता हूँ कि आप राजहंसको न बाँधें । राजकुमारीको भी राजकुमारकी बातें सुनकर पूर्व जीवनकी स्मृति हो आई और दृढ़ प्रतीति हो गयी कि ये ही मेरे प्राणप्रिय उस जीवनके हैं । निश्चयानन्तर उसका मुख-कमल विकसित हो गया तथा वह प्रेमसे हँसकर कहने लगी—हे सौम्य ! उस समय राजा शाम्बने रानी यज्ञवतीके आदेशानुसार राजहंसको पकड़कर बाँधा था । इससे विदित होता है कि

नामधेये परिचिते परस्परज्ञानाय साभिज्ञमुक्त्वा मनोजरागपूर्णमानसौ बभूवतुः ।

(१५) तस्मिन्नवसरे मालवेन्द्रमहिषी परिजनपरिवृता दुहितृकेलि-विलोकनाय तं देशमवाप । बालचन्द्रिका तु तां दूरतो विलोक्य ससम्भ्रमं रहस्यनिर्भेदभिया हस्तसंज्ञया पुष्पोद्भवसेव्यमानं राजवाहनं वृक्षवाटिका-न्तरितगात्रमकरोत् । सा मानसारमहिषी सखीसमेताया दुहितुर्नानाविधां विहारलीलामनुभवन्ती क्षणं स्थित्वा दुहित्रा समेता निजागारगमनायो-द्युक्ता बभूव । मातरमनुगच्छन्ती अवन्तिसुन्दरी 'राजहंसकुलतिलक, विहारवाञ्छया केलिवने मदन्तिकमागतं भवन्तमकाण्ड एव विसृज्य मया समुचितमपि जनन्यनुगमनं क्रियते-तदनेन भवन्मनोरागोऽन्यथा मा

न्येति—परस्परपूर्वजन्मनामनी । परस्परज्ञानाय परस्परप्रतिबोधनाय । साभिज्ञं सप्रमाणम् । मनोजः कामः रागोऽनुरागस्ताभ्यां पूर्णं मानसं ययोस्तौ ।

(१५) तां महिषीम् । ससम्भ्रमं सत्वरम् । रहस्यनिर्भेदभिया राजमहिषी यदि तथाविध राजपुत्रं पश्येत्तदा रहस्यं निर्भिद्येतेति शङ्कया । हस्तसंज्ञया हस्तचेष्टया । वृक्षवाटिकायां गृहोद्याने अन्तरितं गोपितं गात्रं शरीरं यस्य तथाविधम् । राजहंस-कुलतिलकेति सम्बोधनं श्लिष्टं, राजहंसस्य पक्षिविशेषस्य कुले मण्डले तिलक इवेति, पक्षे-राजहंसस्य तदाख्यनृपस्य कुले वंशे तिलको भूषणभूत इवेति चार्थद्वययोगात् । विहारवाञ्छया विहर्तुमिच्छया । अकाण्डे असमये सहसेति यावत् । समुचितमिति कर्त्तव्यमिति हेतोः । भवन्मनोरागः भवतो मनोवृत्तिः । अन्यथा विपरीतः । मयि

पण्डित लोग भी संसारमें कभी-कभी भोलेपनसे अनुचित कर्म कर बैठते हैं । फिर पूर्वजन्म की अन्य बातोंका स्मरण करते-कराते ये दोनो कामदेवके वशीभूत हो गये ।

(१५) इसी अवसरपर मालवेशकी पटरानी अपने बहुतसे परिजनोंसे परिवृत होकर अपनी राजसुताके खेलोंको देखने के लिए उस उपवनमें पधारीं । दूरसे ही बालचन्द्रिकाने उन्हें आते देख लिया और रहस्य–भेदन न हो इस भयसे जल्दीसे राजवाहनके समीप दौड़कर आयीं और हाथके संकेतसे पुष्पोद्भवके साथ-साथ राजकुमार राजवाहनको घने वृक्षोंके निकुञ्जोंमें छिप जानेको कह दिया । राजा मानसारकी पटरानी वहाँपर कुछ देर रहीं और बालिकाकी क्रीड़ाएँ देखकर उसे साथ लेकर राजमहल जाने लगीं । माताकी अनुवर्तिनी होकर जाती हुई राजकुमारी अवन्तिसुन्दरीने कहा—हे राजहंस-कुलतिलक ! तुम इस उपवनमें मेरे साथ रमणके लिए आये थे किन्तु मैं असमयमें ही तुम्हें छोड़कर जा रही हूँ । परन्तु यह जाना उचित और अनिवार्य है क्योंकि माताकी आज्ञा अलङ्घनीय होती

मूत्' इति मरालमिव कुमारमुद्दिश्य समुचितालापकलापं वदन्ती पुनः पुनः परिवृत्तदीननयना वदनं विलोकयन्ती निजमन्दिरमगात्।

(१६) तत्र हृदयवल्लभकथाप्रसङ्गे बालचन्द्रिकाकथिततदन्वयनामधेया मन्मथबाणपतनव्याकुलमानसा विरहवेदनया दिने दिने बहुलपक्षशशिकलेव क्षामक्षामाहारादिसकलं व्यापारं परिहृत्य रहस्यमन्दिरे मलयजरसक्षालितपल्लवकुसुमकल्पिततल्पतलावर्तिततनुलता बभूव।

(१०) तत्र तथाविधावस्थामनुभवन्तीं मन्मथानलसन्तप्तां सुकुमारीं कुमारीं निरीक्ष्य खिन्नो वयस्यागणः काञ्चनकलशसञ्चितानि हरिचन्दनो-

---

कोपं मा कार्षीरित्यर्थः। मरालमिवेति—यथा राजहंसकुलतिलक इत्यनेन मराल उद्दिष्टस्तथा कुमारोऽपीत्यर्थः। परिवृत्ते विवृत्ते दीने विषण्णे नयने यया सा। वदनं मुखं राजपुत्रस्येति शेषः। मन्दिरं गृहम्।

(१६) तत्र निजमन्दिरे। बालचन्द्रिकया कथिते प्रकाशिते तदन्वयनामधेये राजपुत्रस्य कुलनामनी यस्यै सा। दिने-दिने प्रतिदिनम्। बहुलपक्षे कृष्णपक्षे या शशिकला ज्योत्स्ना सेव। अतिक्षीणेत्यर्थः। क्षामक्षामा अतिकृशा। रहस्यमन्दिरे निर्जनगृहे। मलयजरसेन चन्दनद्रवेण क्षालितैः सिक्तैः पल्लवैः किसलयैः कुसुमैश्च कल्पितं रचितं यत् तल्पतलं तत्र आवर्तिनी लुठन्ती तनुलता यस्याः सा।

(१७) खिन्नो विषण्णः। वयस्यागणः सखीवर्गः। हरिचन्दनं चन्दनविशेषः। उशीरं नलदं घनसारः कर्पूरं तैर्मिलितानि मिश्रितानि। तस्या अवन्तिसुन्दर्या-

---

है परन्तु मेरे इस व्यवहारपर आप कुपित नहीं हों और मेरा अनुराग आपपर नहीं यह न समझें तथा मुझपर अनुराग भी कम न करें। इस रीतिसे राजहंसके बहाने राजकुमारसे विनय करती हुई वह राजकुमारी दीनतापूर्ण नेत्रोंसे राजवाहनको देखती हुई अपने भवनमें माता के साथ चली गयी।

(१६) घरपर आनेके पश्चात् बालचन्द्रिकाके आनेपर, उसकी बहुत बुरी दशा हो गयी। जब उसने बालचन्द्रिकाके मुखसे अपने हृदयेश्वरके नाम तथा वंश आदिकी ख्याति सुनी तब तो वह कामबाणोंसे पूर्ण विद्ध हो गयी और मनमें बड़ी व्याकुल हुई। उसकी देहकान्ति कृष्णपक्षके चन्द्रके समान बराबर क्षीणप्रभ होने लगी। भोजन तथा शयनादि सभी व्यापार उसके अव्यवस्थित हो गये। वह एकान्तमें एक कमरेमें चन्दन-वासित जलसे सींची जाती, तथा पुष्पों और पत्रोंकी शय्यापर लोटती हुई पड़ी रहती।

(१७) सुकुमारी राजकुमारीको कामदेवपीड़ित सन्तप्त दशाओंमें देखकर उसकी सखियाँ अत्यन्त खिन्नमुखी तथा दुखी हुईं। ये लोग एक सुवर्णके घड़ेमें मलयगिरि चन्दन, खस,

क्षीरघनसारमिश्रितानि तदभिषेककल्पितानि सलिलानि बिसतन्तुमयानि वासांसि च नलिनीदलमयानि तालवृन्तानि च सन्तापहरणानि बहूनि संपाद्य तस्याः शरीरमशिशिरयत् । तदपि शीतलोपचरणं सलिलमिव तप्ततैले तदङ्गदहनमेव समन्तादाविश्चकार । किंकर्तव्यतामूढां विषण्णां बालचन्द्रिकामीषदुन्मीलितेन कटाक्षवीक्षितेन बाष्पकणाकुलेन विरहानलोष्णनिःश्वासग्लपिताधरया नताङ्ग्या शनैः शनैः सगद्गदं व्यलापि—प्रियसखि, कामः कुसुमायुधः पञ्चबाण इति नूनमसत्यमुच्यते । इयमहमयोमयैरसंख्यैरिषुभिरनेन हन्ये । सखि, चन्द्रमसं वडवानलादतितापकरं मन्ये । यदस्मिन्नन्तः प्रविशति शुष्यति पारावारः, सति निर्गते

अभिषेकाय स्नानाय कल्पितानि स्थापितानि । बिसतन्तुमयानि मृणालसूत्ररचितानि । अशिशिरयत् शीतलीचकार । सलिलमिव तप्ततैले—तप्ततैले जलनिक्षेपाद् यथा तैलस्याधिकतप्तता जायते तद्वद् तस्याः शरीरे कृतेन शीतलोपचारेण तस्या दाहाधिक्यमेव जातमिति भावः । दहनम् अग्निम् । किंकर्तव्यतामूढामधुना किं कर्तव्यं तन्निश्चेतुमशक्नुवानाम् । विरह एवानलस्तस्योष्णनिःश्वासेन ग्लपितः म्लानोऽधरो यस्यास्तया । काम इति—कामस्य आयुधानि कुसुमानि, तस्य बाणा अपि पञ्चसंख्यका एवेति । यदुच्यते तन्मिथ्या । यतोऽयोमयैर्लोहनिर्मितैरसंख्यैः संख्यातुमशक्यैः इषुभिर्बाणैः अनेन कामेन हन्ये हतास्मि । अहमिति शेषः । यस्मिन्निति । यस्मिन् चन्द्रमसि । अस्तसमये चन्द्रः पारावारे प्रविशति तदा पारावारस्य वृद्धिर्न भवति, उदयसमये तु पारावारस्य वृद्धिर्भवति—अतो ब्रवीमि चन्द्रस्यान्तः स्थितया पारावारः शुष्यति निर्गमेण च वर्धत इति । अत एव च वाडवाग्नेरधिकतापकरः हिम-

कर्पूर आदि मिश्रित जल उसके स्नानार्थ के आयीं । कमलतन्तुओंके वस्त्र तथा कमलके पत्रों के पंखे और सन्तापहरण करनेवाली बहुतसी वस्तुएं लाकर उसके शरीरपर उपचार करने लगीं परन्तु वे शीतलोपचार की वस्तुएं उसे और दाहक प्रतीत होने लगीं और शीतलता न दे सकीं । वे वस्तुयें तपे तेलमें पानीके बिन्दुके समान हुईं अर्थात्–तापको शान्त न कर सकीं । किंकर्त्तव्यविमूढा, दुःखी बालचन्द्रिकाको उसने आँखोंमें आँसू भरे नेत्रोंसे देखा । उस समय विरहव्यथाग्निसे उसका मुख उदास हो गया था तथा सर्वाङ्ग मुरझा गये थे । विलाप करती हुई वह गद्गदस्वरमें बोली—हे प्रिय सखी ! संसारी पुरुषोंकी यह बात सर्वथा असत्य है कि कामदेवके पाँचों बाण, पुष्प-निर्मित हैं वह तो मुझे असंख्य लोहेके तीरोंसे छेद रहा है—मारे डाल रहा है । हे सखी, जिस चन्द्रमाको लोग हिमराशि कहते हैं वह मुझे वाडवाग्निसे भी अधिक सन्तापकर मालूम पड़ रहा है । क्योंकि ऐसा नहीं होता

तदेव वर्धते। दोषाकरस्य दुष्कर्म किं वर्ण्यते मया। यदनेन निजसोदर्या पद्मलयाया गेहभूतमपि कमलं विहन्यते।

(१८) विरहानलसंतप्तहृदयस्पर्शेन नूनमुष्णीकृतः स्वल्पीभवति मलयानिलः। नवपल्लवकल्पितं तल्पमिदमनङ्गाग्निशिखापटलमिव सन्तापं तनोस्तनोति। हरिचन्दनमपि पुरा निजयष्टिसंश्लेषवदुरगरदनलिप्तोल्बणगरलसंकलितमिव तापयति शरीरम्। तस्मादलमलमायासेन शीतलोपचारे। लावण्यजितमारो राजकुमार एवागदंकारो मन्मथज्वरापहरणे। सोऽपि लब्धुमशक्यो मया। किं करोमि' इति।

(१९) बालचन्द्रिका मनोजज्वरावस्थापरमकाष्ठां गतां कोमलाङ्गीं तां

प्रकर इति। दोषां रात्रिं करोतीति दोषाकरश्चन्द्रः, दोषाणामाकरश्च। निजसोदर्याः स्वभगिन्याः। लक्ष्मीचन्द्रौ समुद्राज्जाताविति प्रसिद्धिः। विहन्यते मुकुलीक्रियते।

(१८) विरहानलेन सन्तप्तस्य हृदयस्य स्पर्शेन उष्णीकृत उत्तप्तीकृतो मलयानिलः स्वल्पीभवति नूनं मन्ये। उष्णवस्तुसंसर्गादन्योऽपि शुष्यति अतः स्वल्पीभाव उष्णत्वञ्च तस्य भवतीति भावः। नवपल्लवकल्पितं नूतनकिसलयरचितम्। पुरा प्राक्। निजयष्ट्याः स्वशाखायाः संश्लेषवद्भिः सम्पर्किणः उरगस्य सर्पस्य रदनेन दन्तेन लिप्तं युक्तं यदुल्बणं तीव्रं गरलं विषं तेन संकलितं व्याप्तम्। चन्दनतरौ सर्पाणां वासः प्रसिद्धः। हरिचन्दनमपि विषलिप्ततया शरीरस्य तापजनकत्वेनोत्प्रेक्ष्यते। तस्मादिति—युष्माभिर्यद् यद् शीतलतयोपन्यस्यते तत्सर्वमेव मे सन्तापदायकं भवति—अतो निरर्थकमेव—युष्माभिर्निवर्त्यताम् इति भावः। अगदंकारश्चिकित्सकः।

(१९) परमकाष्ठाम् अतिशयम्। अनन्यशरणामनन्यगतिकाम्। स्मरणीयां

तो क्योंकर समुद्र इसके (चन्द्रके) कृष्णपक्षमें प्रवेश करनेपर सूखने लगता है। और शुक्लपक्षमें इसके बाहर आ जानेपर पुनः बढ़ने लगता है। मैं इस चन्द्रके दुष्कर्म कहाँ तक कहूँ। यह अपनी सगी बहिन लक्ष्मीके आधारभूत कमलोंको भी मुकुलित कर देता है।

(१८) मेरी वियोगरूपी अग्निके द्वारा सन्तप्त हृदयके स्पर्शमात्रसे उष्ण होकर मलय पवन भी अल्प हो जाता है। नवीन पल्लवों द्वारा रचित मेरी शय्या तथा बिछौने कामाग्नि के शिखा-समूहके समान मेरे शरीरको जलाये डाल रहे हैं। चन्दनके वृक्षोंपर लिपटे सर्पों के दाँतोंके द्वारा गलित विष साक्षात् मूर्तिमान होकर चन्दनके लेपके रूपमें मुझे सन्तापित कर रहा है। अतः इन शीतलोपचारवाली वस्तुओंसे मेरा उपचार वृथा है। अपने सौन्दर्य से कामदेवको जीतनेवाले राजवाहन ही इस कामज्वरको हटानेमें समर्थ हैं। परन्तु खेद है, कि वे अप्राप्य हैं। हाय अब क्या करूँ?

(१९) जब बालचन्द्रिकाने देखा कि राजकुमारी सखी अवन्तिसुन्दरी कोमलांगी

राजवाहनलावण्याधीनमानसामनन्यशरणामवेक्ष्यात्मन्यचिन्तयत्—

'कुमारः सत्वरमानेतव्यो मया । नो चेदेनां स्मरणीयां गतिं नेष्यति मीनकेतनः । तत्रोद्याने कुमारयोरन्योन्यावलोकनवेलायामसमसायकः समं मुक्तसायकोऽभूत् । तस्मात्कुमारानयनं सुकरम्' इति । ततोऽवन्तिसुन्दरी-रक्षणाय समयोचितकरणीयचतुरं सखीगणं नियुज्य राजकुमारमन्दिर-मवाप । पुष्पबाणबाणतूणीरायमाणमानसोऽनङ्गतप्तावयवसंपर्कपरिम्ला-नपल्लवशयनमधिष्ठितो राजवाहनः प्राणेश्वरीमुद्दिश्य सह पुष्पोद्भवेन संल-पन्नागतां प्रियवयस्यामालोक्य पादमूलमन्वेषणीया लतेव बालचन्द्रिकाग-तेति संतुष्टमना निटिलतटमंडनीभवदम्बुजकोरकाकृतिलसदञ्जलिपुटाम्

गतिं—कथाशेषतां मृत्युमिति शेषः । कुमारयोः कुमारी च कुमारश्चेत्येकशेषः । तयोः । असमसायकः विषमबाणः काम इत्यर्थः । समं युगपत् । द्वयोरेवोपरि । सुकरं सुसाध्यम् । समयेति—तस्मिन् समये तस्यामवस्थायां वा यत्करणीयं तत्र चतुरं पेशलम् । पुष्पबाणस्य कामस्य ये बाणास्तेषां तूणीरवदाचरन्मानसं यस्येति विग्रहः—बाणास्तूणीरे तिष्ठन्ति पुष्पबाणस्य बाणा राजवाहनस्य मानसरूपे तूणीरे तदा आसन्निति भावः । प्रियवयस्यां प्रियसखीम् । बालचन्द्रिकामित्यर्थः । अन्वेषणीया लतेवेति—महौषधत्वाल्लता यथा रोगार्त्तैरन्वेषणयोग्या भवति तथा सा बालचन्द्रिकाऽपि तदानीं राजवाहनस्य मन्मथज्वरापहरणे महौषधिरेवासीदिति भावः । निटिलतटेत्यादि—शिरसि अञ्जलिपुटं निधाय प्रणमन्तीमित्यर्थः । निवीदं

कामज्वरकी चरम सीमापर पहुँच गयी। अब उसका चित्त राजवाहनके अधीन हो गया है। तब वह उसकी दीनावस्थापर विचार करने लगी और मनमें सोचने लगी कि मुझे राज-वाहनको यहाँ अवश्य लाना चाहिये। नहीं तो कामबाणसे यह विद्ध होकर मर जायगी। जब उपवनमें ये दोनों परस्पर अवलोकन कर रहे थे तब कामदेवने विषबाणके द्वारा इन दोनों को एक साथ ही वेध दिया। अतः राजवाहनको यहाँ ले आना कठिन नहीं है—क्योंकि वे भी पीड़ित हैं। तब कुछ दक्ष सहचारियोंको राजकुमारीकी रक्षापर नियोजित करके बालचन्द्रिका-राजकुमार राजवाहनके भवनमें चली गयी। वहाँ जाकर उसने देखा कि कुसुमायुधके बाणोंसे भरा हुआ राजवाहनका चित्त बाणोंके धरनेवाले तरकशके समान हो गया है। कामज्वरसे उत्तप्त स्वशरीरके स्पर्शसे मुरझाये हुए फूलोंकी सेजपर बैठकर वह प्राणप्रिया राजपुत्रीके विषयकी बातें कुमार पुष्पोद्भवके साथ कर रहा है। इतनेमें राजकुमारने राजपुत्रीकी प्रियसखी बालचन्द्रिकाको वहाँ देखा तो उसे ऐसा भास हुआ कि वह वृक्षोंके समीप कोई मनोवाञ्छित औषधिकी खोजमें आयी है। उसे देखकर वह कुमार आनन्दित [illegible] लिए लगी

'इतो निषीद' इति निर्दिष्टसमुचितासनासीनामवन्तिसुन्दरीप्रेषितं सकर्पूरं ताम्बूलं विनयेन ददतीं तां कान्तावृत्तान्तमपृच्छत्। तया सविनयमभाणि—'देव, क्रीडावने भवदवलोकनकालमारभ्य मन्मथमथ्यमाना पुष्पतल्पादिषु तापशमनमलभमाना वामनेनेवोन्नततरुफलमलभ्यं त्वदुरःस्थलालिङ्गनसौख्यं स्मरान्धतया लिप्सुः सा स्वयमेव पत्रिकामालिख्य 'वल्लभायैनामर्पय' इति मां नियुक्तवती'। राजकुमारः पत्रिकां तामादाय पपाठ—

(२०) 'सुभग कुसुमसुकुमारं जगदनवद्यं विलोक्य ते रूपम्।
मम मानसमभिलषति त्वं चित्तं कुरु तथा मृदुलम्॥'

उपविष्टा। वामनेनेति—वामनेन यथा अलभ्यं उन्नततरुफलं लब्धुमिष्यते तद्वत् सापि कामान्धतया विवेकशून्यतया दुर्लभं भवदुरःस्थलालिङ्गनसौख्यं लब्धुमिच्छुरिति भावः। वल्लभाय दयिताय। एनां पत्रिकाम्।

(२०) सुभगेति—हे सुभग प्रियतम, कुसुममिव सुकुमारं सुकोमलं जगति संसारे अनवद्यं अनिन्द्यं निर्दोषमिति यावत्। ते तव। रूपं सौन्दर्यं वपुर्वा। विलोक्य दृष्ट्वा। मम मानसं कर्तृ। अभिलषति वाञ्छति प्रार्थयति वा यत् त्वं स्वचित्तं मानसं तथास्वरूपवत्। मृदुलमतिपेलवं कुरु विधेहीति। तव वपुरतिकोमलं किन्तु चित्तं ते अतिकठिनमिति भावः।

कमलदलके समान अपने हाथोंको जोड़कर उसे प्रणाम किया। और राजवाहनकी आज्ञा पाकर उचितासनपर आ बैठी। 'आओ यहाँ बैठो' इस कथनके अनन्तर बालचन्द्रिकाने उसे उसको प्रेयसी अवन्तिसुन्दरी द्वारा प्रदत्त कर्पूर-वासित पान बड़े विनयके साथ अर्पित किये। पानको ग्रहणकर राजवाहनने अपनी कान्ताका समाचार उससे पूछा। बालचन्द्रिका विनीतभावसे कहने लगी-हे देव ! केलिवनमें जिस दिनसे राजपुत्रीने आपको देखा उसी दिनसे कामपीड़िता है। यहाँ तक कि फूल तथा नये-नये पल्लवोंकी सेजें भी उसे सता रही हैं। फिर उसने वामन (बौने) के समान ऊँचे वृक्षपर लगे फलको न प्राप्त करनेके समान आपके वक्षःस्थलके आलिंगनसुखकी इच्छासे कामान्ध होकर यह पत्र स्वयं लिखकर आपके समीप मुझे भेजा है—यद्यपि वह आपका आलिंगनसुख अलभ्य समझती है पर कामान्धतावश उसे सुगम सोच रही है। पत्र देकर उसने मुझसे कहा—यह पत्र मेरे प्रियतम के समीप ले जाओ। राजकुमारने पत्र लेकर पढ़ा। उसमें लिखा था—

(२०) हे सुभग ! पुष्पके सदृश सुन्दर तथा कोमल तुम्हारे स्वरूपको देखकर मेरा चित्त तुमपर मुग्ध हो गया है। तुम अपने चित्तको भी अपने शरीरके समान कोमल कर लो।

(२१) इति पठित्वा सादरमभाषत-'सखि, छायवन्मामनुवर्तमानस्य पुष्पोद्भवस्य वल्लभा त्वमेव तस्या मृगीदृशो बहिश्चराः प्राणा इव वर्तसे । त्वच्चातुर्यमस्यां क्रियालतायामालवालमभूत् । यत्तथाभीष्टं येन प्रियामनोरथः फलिष्यति तदखिलं करिष्यामि । नताङ्ग्या मन्मनःकाठिन्यमाख्यातम् । यदा केलिवने कुरङ्गलोचना लोचनपथमवर्तत तदैवापहृतमदीयमानसा सा स्वमन्दिरमगात् । सा चेतसो माधुर्यकाठिन्ये स्वयमेव जानाति । दुष्करः कन्यान्तःपुरप्रवेशः । तदनुरूपमुपायमुपपाद्य श्वः परश्वो वा नतांगीं सङ्गमिष्यामि । मद्वृत्तान्तमेवमाख्याय शिरीषकुसुमसुकुमाराया यथा शरीरबाधा न जायेत तथाविधमुपायमाचर' इति ।

(२२) बालचन्द्रिकापि तस्य प्रेमगर्भितं वचनमाकर्ण्य संतुष्टा कन्या-

---

(२१) छायया तुल्यं छायावत् यथा छाया पुरुषं सर्वथा अनुसरति तद्वदित्यर्थः । अनुवर्तमानस्य अनुसरतः सर्वदेव मां सेवमानस्येत्यर्थः । बहिश्चराः प्राणाः द्वितीयमिव जीवितम् । क्रिया कार्यं मत्प्रयोजनमित्यर्थः । सैव लता तस्याम् । आलवालं जलसेकभूमिः । (आलवालं विना लतायाः पुष्टिर्यथा न भवति तथा त्वच्चातुर्यं विना मत्प्रयोजनमपि न सेत्स्यतीति भावः) । मम मनसः काठिन्यं कठोरता । अपहृतं चोरितं मदीयं मानसं चित्तं यया सा । माधुर्यं कोमलता च काठिन्यं कठोरता च ते । उपपाद्य कृत्वा श्वः आगामिदिने । परश्वः—द्वितीयदिने ।

(२२) प्रेम्णा गर्भितं प्रेमपूर्णम् । तन्नोद्याने । चकोरस्येव दीर्घे लोचने यस्याः

---

(२१) इस पद्योत्तरमें राजवाहनने उससे आग्रहके साथ कहा—हे सखि ! पुष्पोद्भव छायाके समान मेरे पास रहता है । उस पुष्पोद्भवकी वल्लभा तुम हो और उस मृगनयनी मेरी प्यारीकी सखी हो तथा उसके बाहरी प्राणोंके सदृश इतस्ततः परिभ्रमण करती हो । इस कार्यरूपी लतामें तुम्हारी चतुरता आलवाल (थाले) का काम करती है । अतः आपकी जो अभिलाषा होगी तथा जो अभीष्ट होगा उसे मैं पूर्णतया सफल करूँगा । यद्यपि वह सुकुमारी मेरे मनको कठोर कहती है परन्तु, मैंने जिस समय उस नतांगीको उस उपवनमें देखा था उसी समयसे वह मेरे मनको चुराकर अपने घर भाग गयी । वह नतांगी हृदय की कठिनता तथा मृदुता खूब जानती है । अस्तु कन्याके अन्तःपुरमें प्रविष्ट होना अति दुष्कर है । अतः वहाँ जानेका कोई सरल उपाय सोचकर मैं कल या परसों उनसे मिलूँगा । इस रीतिसे मेरे वृत्तान्तोंको उसे सुनाकर तुम ऐसी युक्ति करो जिससे शिरीषकुसुमके समान कोमल अङ्गोंवाली इस राजपुत्रीको कोई कष्ट न होवे ।

(२२) वह बालचन्द्रिका राजवाहनके इस प्रेमपूर्ण सन्देशको वहनकर प्रसन्नचित्त होकर

पुरमगच्छत् । राजवाहनोऽपि यत्र हृदयवल्लभावलोकनसुखमलभत तदुद्यानं विरहविनोदाय पुष्पोद्भवसमन्वितो जगाम । तत्र चकोरलोचनावचितपल्लवकुसुमनिकुरम्बं महीरुहसमूहं शरदिन्दुमुख्या मन्मथसमाराधनस्थानं च नताङ्गीपदपङ्क्तिचिह्नितं शीतलसैकततलं च सुदतीभुक्तमुक्तं माधवीलतामण्डपान्तरपल्लवतल्पं च विलोकयंल्ललनातिलकविलोकनवेलाजनितशेषाणि स्मारंस्मारं मन्दमारुतकम्पितानि नवचूतपल्लवानि मदनाग्निशिखा इव चकितो दर्शंदर्शं मनोजकर्णजपानामिव कोकिलकीरमधुकराणां क्वणितानि श्रावं श्रावं मारविकारेण क्वचिदप्यवस्थातुमसहिष्णुः परिबभ्राम ।

(२३) तस्मिन्नवसरे धरणीसुर एकः सूक्ष्मचित्रनिवसनः स्फुरन्मणि-

सा तया । अवचितानि छिन्नानि पल्लवानां कुसुमानाञ्च निकुरम्बाणि समूहा यस्य तम् । नताङ्ग्या अवन्तिसुन्दर्याः पदपङ्क्त्या चरणचिह्नेन चिह्नितम् । सुदत्या आदौ भुक्तमुपभुक्तं पश्चान्मुक्तं त्यक्तम् । माधवीलतामण्डपस्यान्तरे मध्ये यत्पल्लवतल्पं किसलयशय्या तत् । ललनातिलकस्य कामिनीभूषणभूताया अवन्तिसुन्दर्या विलोकनवेलायां दर्शनसमये जनिता उत्पादिताः शेषो येषां तथाभूतामिव वाक्यानीति शेषः । मनोजस्य कामस्य कर्णजपा मन्त्रिणः सहायास्तेषाम् । कामोद्दीपकानामित्यर्थः ।

(२३) धरणीसुरो ब्राह्मणः । सूक्ष्मं श्लक्ष्णं चित्रं नानावर्णं निवसनं वासो

राजपुत्रीके अन्तःपुरमें वापस आ गई । राजपुत्र राजवाहन वहाँसे उठकर वियोगजनित व्यथाके निवारणार्थ केलिवनके उस स्थानपर मनोरञ्जनार्थ चले गये जहाँपर राजकुमारीके प्रथम-प्रथम दर्शन हुए थे और उन्हें आनन्द मिला था । पुष्पोद्भव भी उस समय उनके साथ था । वहाँ चकोर के समान नयनोंवाली अपनी प्रियतमा अवन्तिसुन्दरी द्वारा इकट्ठे किये हुए पुष्पों, पत्रों और वृक्षोंके समूहोंको देखकर उस चन्द्रवदना द्वारा किया हुआ कामपूजनका स्थान देखा । फिर उस नतांगी कुमारीके पदचिह्नोंसे विभूषित बालुकामय प्रदेश तथा उस सुन्दर दाँतवाली कुमारीके द्वारा उपभुक्त माधवी लतामण्डपके आभ्यन्तरिक स्थान में पड़ी पत्रोंकी शय्याको देखा । तब प्रथम दर्शनपर उस सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी द्वारा किये गये हाव-भावोंको संस्मरण करके मन्द-मन्द बहनेवाली हवाके झोंकोंसे काँपते हुए आमोंको देखा । इन नवीन पेड़ोंके पत्तोंको कामाग्निकी ज्वाला जानकर तथा कामदेवके गुप्तचर कोयल, सुग्गे और भौंरोंकी ध्वनियोंको सुनता हुआ वह आश्चर्यान्वित होकर कामदेवकी व्यथासे व्यथित होकर विह्वल हो गया और उस उपवनमें विश्राम करनेमें अशक्त होकर इतस्ततः पर्यटन करने लगा ।

(२३) इसी अवसरपर महीन तथा रंगीन वस्त्रधारी एक विप्र वहाँ आ पहुँचा । उसके

कुण्डलमण्डितो मुण्डितमस्तकमानवसमेतश्चतुरवेषमनोरमो यदृच्छया समागतः समन्ततोऽभ्युल्लसत्तेजोमण्डलं राजवाहनमाशीर्वादपूर्वकं ददर्श। राजवाहनः सादरम् 'को भवान्, कस्यां विद्यायां निपुणः इति तं पप्रच्छ। स च 'विद्येश्वरनामधेयोऽहमैन्द्रजालिकविद्याकोविदो विविधदेशेषु राजमनोरञ्जनाय भ्रमन्नुज्जयिनीमद्यागतोऽस्मि' इति शशंस। पुनरपि राजवाहनं सम्यगालोक्य 'अस्यां लीलावनौ पाण्डुरतानिमित्तं किम्' इति साभिप्रायं विहस्यापृच्छत। पुष्पोद्भवश्च निजकार्यंकरणं तर्कयन्नेनमादरेण बभाषे—'ननु सतां सख्यस्याभाषणपूर्वतया चिरं रुचिरभाषणो भवानस्माकं प्रियवयस्यो जातः। सुहृदामकथ्यं च किमस्ति ?। केलीवनेऽस्मिन्वसन्तमहोत्सवायागताया मालवेन्द्रसुताया राजनन्दनस्यास्य चाकस्मिकदर्शनेऽन्योन्यानुरागातिरेकः समजायत। सततसंभोगसिद्ध्युपायाभावेनासावीदृशीमवस्थामनुभवति' इति। विद्येश्वरो लज्जाभिरामं राजकुमारमुखमभि

यस्य सः। मुण्डितं मस्तकं यस्य तादृशेनापरेण मानवेन समेतो युक्तः। यदृच्छया अकस्मात्। कोविदः पण्डितः। लीलावनौ उद्यानभूमौ। पाण्डुरताया निःश्रीकताया निमित्तं कारणं किम् 'विहारभूमौ तिष्ठन्नपि पाण्डुवदनं किमर्थं बिभर्षि' इति राजवाहनं प्रत्यैन्द्रजालिकस्य प्रश्नः। साभिप्रायं साभिनिवेशम्। सख्यस्य मित्रतायाः। आभाषणं पूर्वं यस्मिंस्तस्य भावस्तया। आभाषणमात्रेणैव सतां मैत्री भवतीति भावः। चिरं दीर्घसमयं यावत्। सुहृदां मित्राणां सकाशे। अकथ्यं अप्रकाश्यम्। अन्योन्यानुरागातिरेकः परस्परप्रेमातिशयः। 'असौ राजवाहनः। लज्जया

कानोंमें मणिमय कुण्डल लटक रहे थे तथा एक और मनुष्य मुण्डन किये हुए उसके साथमें था। देखनेमें ही वह चतुर पुरुष ज्ञात होता था तथा उसकी वेश-भूषा भी भली थी। उसके चेहरेसे उसका तेजःपुंज झलक रहा था। उसने राजवाहनके समीप आकर उसे आशीर्वाद दिया। राजवाहनने भी बड़े विनीतभावसे उससे पूछा-आप कौन हैं तथा आप किस विद्याके पण्डित हैं? उत्तरमें उसने कहा—मेरा नाम विद्येश्वर है। मैं प्रसिद्ध ऐन्द्रजालिक हूँ। अनेक देशोंके राजे महाराजोंका मनोविनोद कराता हुआ, आज ही आपकी नगरी उज्जयिनीमें भ्रमण करता हुआ, आया हूँ। तत्पश्चात् उसने राजवाहनको एक बार अच्छी रीतिसे देखा तथा हँसते हुए पूछा—इन केलिवनोंमें आप पाण्डुवदन क्यों दीख रहे हैं? पुष्पोद्भवने, उसके द्वारा अपने काममें सहायता मिलनेकी कामनासे प्रेरित होकर बड़े आदर तथा आग्रहके साथ कहा—हे प्रभो! भद्र पुरुष पहले ही वार्ता शुरू करते हैं। अत एव आप हमारे मित्र हो गये। आपसे छिपाने योग्य कुछ नहीं है... हमने मालूम किया है। जब आप

वीक्ष्य विरचितमन्दहासो व्याजहार—देव, भवदनुचरे मयि तिष्ठति तव कार्यमसाध्यं किमस्ति । अहमिन्द्रजालविद्यया मालवेन्द्रं मोहयन् पौरजनसमक्षमेव तत्तनयापरिणयं रचयित्वा कन्यान्तःपुरप्रवेशं कारयिष्यामीति वृत्तान्त एष राजकन्यकायै सखीमुखेन पूर्वमेव कथयितव्यः इति । संतुष्टमना महीपतिरनिमित्तं मित्रं प्रकटीकृतकृत्रिमक्रियापाटवं विप्रलम्भकृत्रिमप्रेमसहजसौहार्दवेदिनं तं विद्येश्वरं सबहुमानं विससर्ज ।

(२४ अथ राजवाहनो विद्येश्वरस्य क्रियापाटवेन फलितमिव मनोरथं मन्यमानः पुष्पोद्भवेन सह स्वमन्दिरमुपेत्य सादरं बालचन्द्रिकामुखेन निजवल्लभायै महीसुरक्रियमाणं संगमोपायं वेदयित्वा कौतुकाकृष्टहृदयः

अमरामं मनोज्ञदर्शनम् । व्याजहार उवाच । अनिमित्तं निष्कारणम् । प्रकटीकृतं प्रकाशीकृतं कृत्रिमक्रियायां इन्द्रजालकर्मणि पाटवं चातुर्यं येन तम् । विप्रलम्भः प्रतारणं कृत्रिमप्रेम कपटानुरागः सहजसौहार्दं निष्कपटमित्रता—तानि वेत्तीति तं सबहुमानं बहुसत्कारपूर्वकम् ।

(२४) क्रियापाटवेन कार्यकौशलेन । फलितमिव सिद्धप्रायम् । महीसुरेण ब्राह्मणेन ऐन्द्रजालिकेनेत्यर्थः क्रियमाणमनुष्ठीयमानम् । वेदयित्वा ज्ञापयित्वा । क्षपां

सुहृद हैं तो फिर आपसे गोपनीय कोई बात नहीं रहनी चाहिये । अतः आप सुनें—एक दिन इस केलिवनमें मालवेशपुत्री राजकुमारी अवन्तिसुन्दरी आयी थी । वसन्तमहोत्सवके निमित्त वह आयी थी तथा मेरे ये सखा राजवाहन भी दैववश उसी समय उपवनमें आ गये । परस्पर अवलोकन करते हुए इन दोनोंमें प्रेम हो गया किन्तु आगे कोई उपाय नहीं दिखलायी पड़ता है जिससे ये दोनों दीर्घ कालिक सुख-भोग प्राप्त कर सकें । इसी हेतु इनकी यह क्षीण दशा हो रही है । लज्जासे मनोज्ञ राजकुमारके मुखको देखकर मन्द-मन्द मुसकानसे विद्येश्वरने कहा—हे देव ! आपका अनुचर मैं उपस्थित हूँ फिर आपको किस बातकी चिन्ता । संसारमें क्या असाध्य है—कुछ भी नहीं । आप किसी सखी द्वारा इस राजपुत्रीके समीप यह कहला दें कि मैं इन्द्रजाल विद्या द्वारा मालवेश मानसारको मोहित करके समस्त पुरवासियोंके समक्ष तुम्हारे साथ विवाह करके तुम्हारे मन्दिरमें प्रविष्ट होऊँगा । ऐन्द्रजालिककी बातोंपर प्रसन्न होकर राजवाहनने उस निष्कारण मित्र तथा कृत्रिम क्रिया-कुशल, विप्रलम्भ कृत्रिम प्रेम तथा सहज सौहार्द आदि क्रियाओंको जाननेवाले उस विप्रको सम्मानके साथ विदा किया ।

(२४) तदनन्तर विद्येश्वरकी कला-कुशलतासे मानो राजवाहनकी मनोकामना पूर्ण हो गयी ऐसा सोचकर राजवाहन अपने घर पुष्पोद्भवके साथ-साथ लौटा तथा वहाँपर बालचंद्रिकाको बुलवाया और इस विप्रद्वारा उपदेशित वे सब युक्तियाँ बता दीं । फिर उत्सुक-

'कथमिमां क्षपां क्षपयामि' इत्यतिष्ठत् । परेद्युः प्रभाते विद्येश्वरो रसभावरीतिगतिचतुरस्तादृशेन महता निजपरिजनेन सह राजभवनद्वारान्तिकमुपेत्य दौवारिकनिवेदितनिजवृत्तान्तः सहसोपगम्य सप्रणामम् 'ऐन्द्रजालिकः समागतः' इति द्वाःस्थविज्ञापितेन तद्दर्शनकुतूहलाविष्टेन समुत्सुकावरोधसहितेन मालवेन्द्रेण समाहूयमानो विद्येश्वरः कक्षान्तरं प्रविश्य सविनयाशिषं दत्त्वा तदनुज्ञातः परिजनताड्यमानेषु वाद्येषु नदत्सु, गायकीषु मदनकलकोकिलामञ्जुलध्वनिषु, समधिकरागरञ्जितसामाजिकमनोवृत्तिषु पिच्छिकाभ्रमणेषु, सपरिवारं परिवृत्तं भ्रामयन्मुकुलितनयनः क्षणमतिष्ठत् । तदनु विषमं विषमुल्वणं वमन्तः फणालङ्करणा रत्नराजि-

राशिम् । क्षपयामि यापयामि । रसाः शृङ्गारादयः, भावोऽभिप्रायादयः, रीतिगतयः इन्द्रजालक्रियाः तत्र चतुरः । तादृशेन तत्तद्गुणवता । दौवारिकैः द्वारपालैर्निवेदितः प्रकाशितो निजवृत्तान्तः स्वपरिचयो येन सः । समुत्सुकः द्रष्टुमुत्कण्ठितोऽवरोधो राजस्त्रियस्तेन । मालवेन्द्रेण मानसारेण । नदत्सु ध्वनत्सु । मदकलानां मदमत्तानां कोकिलानामिव मञ्जुलो मनोहरो ध्वनिर्यासां तासु । गायकीविशेषणमेतत् । समधिकेनातिशयितेन रागेणानुरागेण रञ्जिता आकृष्टा सामाजिकानां सभ्यानां मनोवृत्तिर्येन तेषु । पिच्छिकाभ्रमणेष्वित्यस्य विशेषणम्, पिच्छिका ऐन्द्रजालिकानामुपकरणभूताः मयूरादिपुच्छगुच्छाः । ऐन्द्रजालिकाः पिच्छिकां भ्रामयित्वा जनान् मोहयन्तीति प्रसिद्धम् । परिवृत्तं मण्डलाकारम् । मुकुलितनयनो मुद्रितलोचनः । उल्वणं तीव्रम् । वमन्तः उद्गिरन्तः । फणा फटा अलंकरणं भूषणं येषां ते । रत्नराजिभिः

तापूर्ण हृदयोंसे विचार करते हुए उन दोनोंने वह रात व्यतीत की । दूसरे दिन प्रभातकालमें रसभाव-रीति-व्यवहारमें कुशल वह विप्र विद्येश्वर अपने अनेकों परिजनोंके साथ राजभवनके द्वारपर आ पहुँचा । द्वारपालके द्वारा अपने आगमनकी सूचना उसने महाराज क समीप भेजी । द्वारपालने जाकर राजासे प्रणाम करके कहा—हे देव ! दरवाजेपर एक ऐन्द्रिजालिक अपने चतुर पात्रोंके साथ आया है और जादूके खेल दिखलाना चाहता है । राजा मानसार तथा रानियोंने बड़ी कुतूहलताके साथ उसे बुलवाया । वह राजाके समीप गया तथा दूसरे कक्षको लाँघकर उसने राजा मानसारको आशीर्वाद दिया । उसी समय विद्येश्वरकी आज्ञासे उसके दक्ष पात्र कई प्रकारके बाजे बजाने लगे और गानेवाली मतवाले स्त्रीके कोकिल कण्ठसे चुटीले गीत गाने लगीं । विद्येश्वर स्वयं मोरपङ्खोंके गुच्छेको मंत्र पढ़ पढ़कर घुमाने लगा जिससे दर्शकोंकी चित्तवृत्तियाँ उसकी ओर अनुरंजित हो जावें । वह आँखें बन्दकर मौन होकर थोड़ी देर बैठ गया तथा उसके साथी उसकी परिक्रमा करने

नीराजितराजमन्दिराभोगा भोगिनो भयं जनयन्तो निश्चेरुः।

(२५) गृध्राश्च बहवस्तुण्डैरहिपतीनादाय दिवि समचरन्। ततोऽग्रजन्मा नरसिंहस्य हिरण्यकशिपोर्दैत्येश्वरस्य विदारणमभिनीय महाश्चर्यान्वितं राजानमभाषत—'राजन् अवसानसमये भवता शुभसूचकं द्रष्टुमुचितम्। ततः कल्याणपरम्पराप्राप्तये भवदात्मजाकाराभरतरुण्या निखिललक्षणोपेतस्य राजनन्दनस्य विवाहः कार्यः' इति। तदवलोकनकुतूहलेन महीपालेनानुज्ञातः स संकल्पितार्थसिद्धिसंभावनसम्फुल्लवदनः सकलमोहजनकमञ्जनं लोचनयोर्निक्षिप्य परितो व्यलोकयत्। सर्वेषु 'तदैन्द्रजालिकमेव कर्म, इति साद्भुतं पश्यत्सु रागपल्लवितहृदयेन राजवाहनेन पूर्व-

---

शिरःस्थितरत्नश्रेणिभिः नीराजित उज्ज्वलीकृता राजमन्दिरस्याभोगः प्रदेशो यैस्ते। भोगिनः सर्पाः। निश्चेरुः चरन्ति स्म।

(१२) गृध्राः पक्षिविशेषाः। तुण्डैर्मुखैः। अहिपतीन् सर्वश्रेष्ठान्। दिवि गगने। अग्रजन्मा ब्राह्मणः। विदारणं नखैश्छेदनम्। अभिनीय दर्शयित्वा। अवसानसमये क्रीडासमाप्तौ। कल्याणानां परम्परा श्रेणिस्तस्या अवाप्तये प्राप्तये। भवत् आत्मजा नन्दिनी तस्या आकार इवाकारो यस्यास्तस्याः भवत्कन्यासदृश्या इत्यर्थः। निखिललक्षणोपेतस्य सर्वसुलक्षणयुतस्य। अनुज्ञात आदिष्टः। संकल्पितस्य अभीष्टस्य

लगे। तब भीड़के समक्ष उसने बड़े-बड़े साँपोंको सहसा निकालना शुरू किया उन साँपोंके मुखोंसे विष निकल रहा था उनके मस्तकपर रखी मणियाँ राजमंदिरके आँगनको देदीप्यमान बना रही थीं। उन सर्पोंको देखकर सभी दर्शक डर गये और कुछ-कुछ दूर हट गये।

(२५) दर्शकोंको भयान्वित देखकर उस विप्रवरने बड़े-बड़े गृध्र उत्पन्न किये जो अपने बड़े-बड़े चंगुलोंमें उन विषधर साँपोंको पकड़कर आकाशमें उड़ने लगे। फिर उसने नृसिंह भगवान्‌को उत्पन्न कराया तथा उनके द्वारा हिरण्यकशिपुदैत्येश्वरके विदारणका अति आश्चर्यकारी रूपक दर्शकोंको दिखाकर मुग्ध किया और राजासे कहा—इन्द्रजालके सभी खेलोंके पश्चात् एक मांगलिक रूपक देखना सर्वथा उचित है। इस शुभ परम्परासूचक खेलकी कल्याण परम्परामें मैं आपकी पुत्रीके समान स्वरूपवाली युवतीका विवाह सभी तरहके राजलक्षणोंसे युक्त एक राजकुमारसे कराऊँगा। उस रूपकको देखनेकी राजा मानसारको प्रबल उत्कंठा हुई। अपनी पूर्वसंकल्पित मनोभिलाषाको पूर्ण करनेवाली राजाज्ञा प्राप्त करके विप्रेश्वर प्रसन्न चित्त हो गया और मुख चमक उठा। तत्काल ही उसने डिब्बीसे समस्त जनोंको मोहित करनेवाला अंजन निकाला और उसे अपनी दोनों आँखोंमें लगा लिया तथा चारों ओर देखने लगे। रागपल्लवित राजवाहन द्वारा पहलेसे संकेतित राजकुमारी बहुत तरहके आभूषणों तथा वस्त्रोंको पहनकर आयी हुई थी। उसके

संकेतसमागतामनेकभूषणभूषिताङ्गीमवन्तिसुन्दरीं वैवाहिकमन्त्रतन्त्रनैपुण्येनाग्निं सांक्षीकृत्य संयोजयामास। क्रियावसाने सति 'इन्द्रजालपुरुषाः सर्वे गच्छन्तु भवन्तः' इति द्विजन्मनोच्चैरुच्यमाने सर्वे मायामानवा यथायथमन्तर्भावं गताः। राजवाहनोऽपि पूर्वकल्पितेन गूढोपायचातुर्येणैन्द्रजालिकपुरुषवत्कन्यान्तःपुरं विवेश। मालवेन्द्रोऽपि तदद्भुतं मन्यमानस्तस्मै वाडवाय प्रचुरतरं धनं दत्वा विद्येश्वरम् 'इदानीं साधय' इति विसृज्य स्वयमन्तर्मन्दिरं जगाम। ततोऽवन्तिसुन्दरी प्रियसहचरीवरपरिवारा वल्लभोपेता सुन्दरं मन्दिरं ययौ। एवं दैवमानुषबलेन मनोरथसाफल्यमुपेतो राजवाहनः सरसमधुरचेष्टाभिः शनैः-शनैर्हरिणलोचनाया

अर्थस्य प्रयोजनस्य (अवन्तिसुन्दरीराजवाहनयोर्विवाहरूपस्येत्यर्थः) सिद्धेः सम्भावनेन सम्भवतया संफुल्लं हर्षविकसितं वदनमाननं यस्य सः। सकलमोहजनकं सर्वेषां द्रष्टृणां भ्रमोत्पादकम्। अञ्जनं कज्जलम्। लोचनयोः स्वनेत्रयोः। परितः समन्तात्। पूर्वसंकेतेन प्राक्सूचनानुसारेण समागतामुपस्थिताम्। वैवाहिका विवाहसम्बन्धिनो ये मन्त्र-तन्त्रास्तेषु यन्नैपुण्यं पाटवं तेन। यथाविधीत्यर्थः। मायामानवाः कल्पितपुरुषाः। अन्तर्भावमदृश्यताम्। वाडवाय ब्राह्मणाय। 'द्विजात्यग्रजन्मभूदेववाडवाः' इत्यमरः। साधय गच्छ। दैवमदृष्टजनितं मानुषमैन्द्रजालिकविहितं च यद्बलं तेन। अपनयन् दूरीकुर्वन्। उपनयन् प्रापयन्। रहः निर्जने। विश्रम्भं विश्वासम्। संलापे इति शेषः। संलापः परस्परालापः। तदनुलापेति—तस्या अनुलाप एव

साथ वैवाहिक मन्त्रको पढ़ते हुए अग्निको साक्षी कराकर राजवाहनका विवाह अवन्तिसुन्दरीसे कर दिया। इन्द्रजालके इस विवाहरूपी प्रहसनकी समाप्तिपर उस विप्रने कहा—'हे ऐन्द्रजालिक पात्रो! आप लोग अब जायें।' यह सुनकर वे सभी मायावी मानव धीरे-धीरे अदृश्य हो गये। पहलेसे निश्चित तथा गुप्त वेशधारी एवं छिपनेकी कलामें प्रवीन राजवाहन भी मायावी पुरुषके समान कन्याके अन्तःपुरमें चले गये। मालवनाथ मानसारने उस ऐन्द्रजालिकके अद्भुत कामोंकी प्रशंसा की तथा उसे प्रचुर धन देकर कहा—हे ऐन्द्रजालिक अब आप जायें। आपके खेल अद्भुत थे। फिर मानसार भी अपने राजप्रसादमें चले गये। तब अपनी प्रिय सखियोंके साथ अवन्तिसुन्दरी कुमारी भी अपने प्राणेश्वरको साथ लिये अन्तःपुरमें आ गयी। इस रीतिसे दैवी और मानुषी पराक्रमद्वारा अपना मनोरथ साधकर अपनी सरस और सुकलित क्रियाओं द्वारा राजवाहनने धीरे-धीरे उस मृगलोचनाकी लज्जाको दूर कर दिया। फिर एकान्तमें रतिसुखका आनन्द लेते हुए वार्तालाप द्वारा उसके चित्तमें अपने प्रति विश्वास उत्पन्न कराया। तदनन्तर उस

लज्जामपनयन्सुरतरागमुपनयन् रहोविश्रम्भमुपजनयन् संलापे तदनुलापपीयूषपानलोलश्चित्रचित्रं चित्तहारिणं चतुर्दशभुवनवृत्तान्तं श्रावयामास।

इति श्रीदण्डिनः कृतौ दशकुमारचरितेऽवन्तिसुन्दरीपरिणयो नाम पञ्चम उच्छ्वासः।

इति पूर्वपीठिका

पीयूषममृतं तस्य पाने सानुरागाकर्णने लोलश्चञ्चलः। चित्रचित्रम् अत्याश्चर्यजनकम्। चतुर्दशानां भुवनानां वृत्तान्तमाख्यायिकाम् श्रावयामास। अवन्तिसुन्दरीमिति शेषः। आख्यायिकाश्रवणे युवतीनां बलवती स्पृहा भवतीति ध्येयम्।

इति श्रीताराचरणभट्टाचार्यकृतायां बालविबोधिनीसमाख्यायां दशकुमारचरितव्याख्यायां पञ्चमोच्छ्वासः।

समाप्ता पूर्वपीठिका

राजपुत्रीकी सुधामयी मधुर वचनावली एवं बहुत तरहकी मीठी बातोंको जिज्ञासासे सुना। फिर उसे चित्तहारी चौदहों भुवनोंकी मनोहर आख्यायिकाएँ सुनायीं—और समयोचित आनन्द करने लगा।

इस प्रकारसे दशकुमारचरितके पञ्चमोच्छ्वासकी बालक्रीडा नामक हिन्दी टीका समाप्त हुई।

पूर्वपीठिका समाप्त।

चौखम्बा अमरभारती प्रकाशन के परीक्षोपयोगी ग्रन्थ

रघुवंशमहाकाव्यम् । "इन्दुकला" संस्कृत हिन्दी व्याख्या सहित ।
पं० वैद्यनाथ झा । प्रथम सर्ग ३–००, द्वितीय सर्ग ३–००,
षष्ठ सप्तम सर्ग ६–०० तृतीय सर्ग ४–००,

विक्रमाङ्कदेव चरितम् । सटिप्पण 'चन्द्रकला' संस्कृत-हिन्दी
व्याख्योपेतम् । आचार्य श्री शेषराज शर्मा रेग्मी । प्रथम सर्ग ६–००

अलङ्कारसारमञ्जरी । 'इन्दुश्री' संस्कृत हिन्दी व्याख्योपेतम् ।
पं० श्री हरेकान्त मिश्र साहित्याचार्य २–५०

काव्यदोष । काव्यदोष एक अनुशीलन । डॉ० जनार्दनस्वरूप अग्रवाल ३०–००

काव्यमीमांसा । संस्कृत-हिन्दी टीका सहित । १–५ अध्याय ३–००

शिशुपालवधम् । सुधा संस्कृत-हिन्दी टीका सहित । १–४ सर्ग १४–००

कुमारसम्भवमहाकाव्यम् । संस्कृत-हिन्दी टीका । १–५ सर्ग, प्रत्येकसर्ग २–५०
षष्ठ सर्ग ५–००, ६–७ सर्ग ७–००, १–७ सर्ग १६–००

दशकुमारचरितम् । संस्कृत-हिन्दी व्याख्या सहित । पूर्वपीठिका ४–५०
विश्रुतचरित १–२५ सम्पूर्ण २५–००

किरातार्जुनीयम् । 'घण्टापथ' संस्कृत तथा 'प्रकाश' हिन्दी टीकासहित
सम्पूर्ण २०–०० १–५ सर्ग ४–००

छन्दोमञ्जरी । 'प्रभा'-'रुचिरा' संस्कृत-हिन्दी टीका सहित १०–००

सूक्तिसंग्रहः । राक्षसकृतः । संस्कृत हिन्दी टीका सहित ३–००

पिंगलछन्दः सूत्रम् । 'हलायुधवृत्ति' तथा 'कादम्बिनी' हिन्दी व्याख्या २–५०

नैषधमहाकाव्यम् । 'जीवातु' 'मणिप्रभा' संस्कृत-हिन्दी व्याख्या सहित
१ला सर्ग ३–५०, १–३ सर्ग ६–००, १–५ सर्ग १०, १–९ सर्ग १५–००
१०–११ सर्ग १०–००, पूर्वार्ध २५-००, उत्तरार्ध ३५-००, सम्पूर्ण ६०-००

काव्यदीपिका । संस्कृत-हिन्दी टीका सहित अष्टशिखा २–५०, संपूर्ण ८–००

रसगङ्गाधररहस्य । प्रश्नोत्तरी । पं० मदनमोहन झा ८–००

ध्वन्यालोकरहस्यम् । प्रश्नोत्तरी । पं० शोभितमिश्र १०–००

रघुवंशमहाकाव्यम् । चन्द्रकला संस्कृत-हिन्दीटीकासहित १३–१४ सर्ग ८–००

अन्यप्राप्तिस्थान—चौखम्बा संस्कृत पुस्तकालय, कचौड़ी गली, वाराणसी ।